कृषि उद्यान दर्पण

Volume 1 : Issue 3 : December2021

कृषि उद्यान दर्पण

3/2, ड्रमण्ड रोड, (नथानी अस्पताल के सामने), प्रयागराज-211001, (U.P.) दूरभाष-9452254524
वेबसाइट : saahasindia.org, ई-मेल-contact.saahas@gmail.com
Articale Submission :– krishiudyandarpan.hi@gmail.com

सम्पादकीय मण्डल

प्रधान संपादक
डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, उद्यान विज्ञान विभाग एवं फल विज्ञान विभाग
चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

वरिष्ठ संपादक
डॉ. रोशन लाल राऊत
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट (एम.पी.)
डॉ. शुभम कुमार कुलश्रेष्ठ
सहायक अध्यापक, उद्यान विज्ञान विभाग
रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन (एम.पी.)

सह सम्पादक गण
डॉ. नीलम राव रंगारे
वैज्ञानिक, संस्था निदेशालय
इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, लाभण्डी, रायपुर (छत्तीसगढ़)
डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह
पशुचिकित्सक क्षेत्र सहायक,पशुपालन एवं डेयरी विभाग, शुआट्स, (उ.प्र.)
डॉ. अर्घ्य मानी
सहायक अध्यापक, लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय (एलपीयू), फगवारा, (पंजाब)
प्रखर खरे
एम.एस.सी. उद्यान विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज (उ.प्र.)

पांडुलिपि संपादक
स्निग्धा हल्दर

कंटैट लेखक/ स्तंभ लेखक
डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय
विशेष कार्य अधिकारी
आई.सी.ए.आर., आई.ए.आर.आई, झारखण्ड, हजारीबाग (झारखण्ड)

फोटोग्राफी
स्वप्निल सुभाष स्वामी

वेब एडिटर
प्रितेश हलदार
प्रकाशक, एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)

प्रकाशक
Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors (SAAHAS)

कृषि उद्यान दर्पण

इस पृष्ठ में

- **मृदा परीक्षण** 2
  मेंघा विश्वकर्मा, जी. एस. टैगोर एवं रजनी सोलंकी
- **पोषण सुरक्षा के लिए किचन गार्डनिंग** 6
  रजनी सोलंकी, बी. पी. बिसेन एवं मेंघा विश्वकर्मा
- **जलवायु परिवर्तन के परिवेश में लाभ हेतु हाइड्रोपोनिक (मृदा रहित खेती)** 11
  महेन्द्र जड़िया, बलवीर सिंह एवं प्रमोद कुमार वर्मा
- **मिट्टी की जाँच कराये, किसी भी फसल से बम्पर पैदावार लें** 15
  खलील खान, वी. के. कनौजिया एवं अमर सिंह
- **बंजर भूमि में जल प्रबंधन के साथ बागवानी** 20
  महेन्द्र जड़िया, बलवीर सिंह एवं प्रमोद कुमार वर्मा
- **फलोद्यान में अन्तवर्तीय फसल प्रणाली अधिकतम आय का साधन** 22
  नकुल राव रंगारे अनय रावत एवं एन. आर. रंगारे
- **जैविक खाद बंनाने की वैज्ञानिक विधि** 25
  अलीमुल इस्लाम, एवं नौशाद आलम
- **धान की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग एवं नियंत्रण** 27
  एन. आर. रंगारे एवं अनय रावत
- **लीची का विपणनः परिदृश्य एवं सुधार जरूरते** 30
  विशाल नाथ एवं स्वनिल पाण्डेय
- **पोषक तत्वों से भरपूर अलसी अतिगुणकारी** 34
  मयंक मेंहरा, आशीष कुमार त्रिपाठी एवं सुखलाल वास्केल
- **सावधानी पूर्वक करें कीटनाशक दवाओं का प्रयोग** 36
  अलीमुल इस्लाम एवं सूर्य नारायण
- **सरसों एवं तोरिया के प्रमुख हानिकारक कीट व नियंत्रण** 38
  एन आर रंगारे, स्मिता बाला रंगारे एवं सृष्टि मेहरा
- **कृषि रसायनो के रख रखाव व प्रयोग करने में रखी जाने वाली सावधानियाँ** 41
  नरेन्द्र कुमार एवं एस. के. बिश्वास
- **आधुनिक कृषि एवं मृदा स्वास्थ्य हेतु फसल अवशेष प्रबंधन** 44
  सृष्टि मेंहरा, हेमंत राहंगड़ाले, नकुल राव रंगारे एवं एन. आर. रंगारे
- **अलसी उत्पादन की नई नकनीक** 49
  आर एल राउत, कमलेशवर गौतम एवं रमेश अमूले
- **मटर (पाईसम सटाईवम) की खेती की उन्नत तकनीकी** 51
  एस.एल. वास्केल, ए.के. त्रिपाठी, मयंक मेहरा एवं सुनील कुमार जातव
- **प्याज में एकीकृत रोग एवं कीट प्रबंधन** 54
  रोशन लाल राउत, कमलेशवर गौतम, रमेश अमूले
- **सेम की खेती** 57
  विजय बहादुर, वी. एम. प्रसाद एवं प्रसाद देवी सिंह

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

मृदा परीक्षण

मेंघा विश्वकर्मा[1]*, जी. एस. टैगोर[2] एवं रजनी सोलंकी[3]

[1 & 3]श्री वैष्णव विद्यापीठ विश्वविद्यालय, इंदौर

[2] जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : meghavishwakarma007@gmail.com

परिचय

मृदा परीक्षण से पौधों के लिए आवश्यक पोषको की आवश्यकता का ज्ञान होता है तथा मृदा में उपस्थित तत्वों की मात्रा का पता लगता है। पौधों की आवश्यकतानुसार मृदा में उचित प्रकार के तथा उचित मात्रा में उर्वरक या मृदा सुधारक मिलाये जा सकते है। मृदा परीक्षण मृदा पोषक प्रदान करने की क्षमता का निर्धारण करने की एक रासायनिक विधि है। पादप विश्लेषण की अपेक्षा मृदा विश्लेषण या मृदा परीक्षण की विधि इस दृष्टि से अच्छी है। इससे फसल बोने से पूर्व मृदा की पोषक प्रदान करने की क्षमता ज्ञात हो जाती है और फसल में उर्वरको की आवश्यक मात्रा दी जा सकती है।

मृदा परीक्षण क्यों?

अपने खेत की मिट्टी में पाए जाने वाले सटीक पोषक तत्व और पी.एच. को जानना किसी भी स्वस्थ फसल उत्पादन कार्यक्रम का पहला कदम है। फसलें आमतौर पर मिट्टी के स्वास्थ्य और स्थिति के आधार पर बहुत विस्तृत किस्म की मिट्टी और विभिन्न उर्वरक आवश्यकताओं पर उगाई जाती हैं। कई पोषक तत्वों के उपयोग से मिट्टी में असंतुलन हो सकता है और अंततः पर्यावरण और दूषित पानी और नीचे के जीवों को प्रभावित कर सकता है। मृदा परीक्षण से अभिप्राय खेत की मिटटी के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों का परीक्षण करना और उसकी उपजाऊ शक्ति का वैज्ञानिक ढंग से मूल्यांकन करना है। मृदा परीक्षण आधारित खादों का प्रयोग वैसे ही है, जैसे डॉक्टरी परीक्षण के बाद दवाई लेना।

मृदा परीक्षण द्वारा हम मिट्टी में विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा और उनकी उपलब्धता का सही मूल्यांकन कर सकते है। फसल में आवश्यकतानुसार संतुलित मात्रा डाल सकते है। पोषक तत्वों के अलावा मिट्टी में अम्लीयता, क्षारीयता एवं विद्युतचालकता की स्थिति का पता लगाकर भूमि सुधार कर रसायनो, जैसे की चूना या जिप्सम की अनिवार्यता एवं सही मात्रा का निर्धारण किया जा सकता है।

खादों के संतुलित प्रयोग से पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता साथ ही साथ फसलों की उपज तथा गुणवत्ता बढ़ती है, मिट्टी का स्वास्थ्य ठीक बना रहता है व धन की बढ़त होती है। कुल मिलाकर फसल उत्पादन में मृदा परीक्षण की वही भूमि का है, जो एक चिकित्सक के लिए रोगी की जाँच में थर्मामीटर की होती है।

सिद्धांत

मृदा परीक्षण मृदा संसाधन प्रबंधन का एक अनिवार्य घटक है। एकत्र किया गया प्रत्येक नमूना किए जा रहे क्षेत्र का एक सच्चा प्रतिनिधि होना चाहिए। प्रयोगशाला विश्लेषण से प्राप्त परिणामों की उपयोगिता नमूनाकरण परिशुद्धता पर निर्भर करती है। इसलिए बड़ी संख्या में नमूने एकत्र करने की सलाह दी जाती है, ताकि उप-नमूनाकरण द्वारा वांछित आकार का नमूना प्राप्त किया जा सके। सामान्य तौर पर प्रति दो हेक्टेयर क्षेत्र के लिए एक नमूने की दर से नमूना लिया जाता है । हालाकि, अधिकतम पाँच हेक्टेयर क्षेत्र के लिए कम से कम एक नमूना एकत्र किया जाना चाहिए। मृदा सर्वेक्षण कार्य के लिए मृदा प्रोफ़ाइल प्रतिनिधि से आस पास के क्षेत्र की मिट्टी में नमूने एकत्र किए जाते हैं।

आवश्यक सामग्री

- कुदाल या बरमा (पेंच या ट्यूब या पोस्टहोल प्रकार)
- खुरपी
- कोर नमूना
- नमूनाबैग
- प्लास्टिक ट्रे या बाल्टी

विचार करने योग्य बिंदु

- परती अवधि के दौरान मिट्टी का नमूना एकत्र करें।
- खड़ी फसल में पंक्तियों के बीच नमूने एकत्र करें।

- ज़िग-ज़ैग पैटर्न में कई स्थानों पर नमूनाकरण एकरूपता सुनिश्चित करता है।
- फील्ड जो दिखने, उत्पादन और पिछले प्रबंधन प्रथाओं में समान हैं, फील्ड को एक नमूना इकाई में समूहीकृत किया जा सकता है।
- उन खेतों से अलग नमूने एकत्र करें जो रंग, ढलान, जलनिकासी, पिछले प्रबंधन प्रथाओं जैसे चूना, जिप्सम आवेदन, निषेचन, फसलप्रणाली आदि में भिन्न हों ।
- मृत खांचे, गीले स्थानों, मुख्य बांध के पास के क्षेत्रों, पेड़ों, खाद के ढेर और सिंचाई चैनलों में नमूना लेने से बचें।
- उथली जड़ वाली फसलों के लिए, 15 सेमी. गहराई तक के नमूने एकत्र करें। गहरी जड़ वाली फसलों के लिए 30 सेमी. गहराई तक के नमूने एकत्र करें। वृक्ष फसलों के लिए, प्रोफ़ाइल नमूने एकत्र करें।
- हमेशा खेत के मालिक की उपस्थिति में मिट्टी का नमूना एकत्र करें, जो खेत को बेहतर जानता हो।

प्रक्रिया

- दृश्य अवलोकन और किसान के अनुभव के आधार पर खेत को विभिन्न समरूप इकाइयों में विभाजित करें।
- नमूना स्थान पर सतह के कूड़े को हटा दें।
- बरमा को 15 सेमी. की गहराई तक ले जाएँ और मिट्टी का नमूना लें।
- प्रत्येक नमूना इकाई से कम से कम 10 से 15 नमूने एकत्र करें और एक बाल्टी या ट्रे में रखें।
- यदि बरमा उपलब्ध नहीं है तो कुदाल का उपयोग कर के नमूना स्थान में 15 सेमी. की गहराई तक 'V' आकार का कट बनाये।
- 'V' आकार के कटे हुए भाग के खुले भाग के ऊपर से नीचे तक मिट्टी के मोटे टुकड़े हटा दें और एक साफ कन्टेनर में रख दें।
- नमूनों को अच्छी तरह मिलाये और जड़, पत्थर, कंकड़ और बजरी जैसी बाहरी सामग्री को हटा दें।
- क्वार्टरिंग या कंपार्ट मेंटलाइज़ेशन द्वारा बल्क को लगभग आधा से एक किलो ग्राम तक कम करें।
- अच्छी तरह मिश्रित नमूने को चार बराबर भागों में विभाजित करके क्वार्टरिंग की जाती है। दो विपरीत क्वार्टरों को छोड़ दिया जाता है और शेष दो क्वार्टरों को रीमिक्स किया जाता है और वांछित नमूना आकार प्राप्त होने तक प्रक्रिया को दोहराया जाता है।
- एक साफ कठोर सतह पर मिट्टी को समान रूप से फैलाकर लंबाई और चौड़ाई के साथ-साथ रेखाएँ खींचकर छोटे डिब्बों में विभाजित कर के कंपार्ट मेंटलाइज़ेशन किया जाता है। प्रत्येक डिब्बे से एक चुटकी मिट्टी एकत्र की जाती है। नमूना की वांछित मात्रा प्राप्त होने तक यह प्रक्रिया दोहराई जाती है।
- एक साफ कपड़े या पॉलिथीन बैग में नमूना एकत्र करें।
- बैग को किसान का नाम, खेत का स्थान, सर्वेक्षण संख्या, पिछली फसल उगाई गई, वर्तमान फसल, अगले सीजन में उगाई जाने वाली फसल, संग्रह की तारीख नमूने का नाम आदि जैसी जानकारियों के साथ लेबल करें ।

प्रोफ़ाइल से मिट्टी के नमूनों का संग्रह

- प्रोफ़ाइल के उजागर होने के बाद गड्ढे के एक चेहरे को कुदाल से सावधानी पूर्वक साफ करें और प्रत्येक क्षितिज के उत्तराधिकार और गहराई को नोट करें।
- संरचना, रंग और कॉम्पैक्टनेस दिखाने के लिए सतह को चाकू या कुदाल के किनारे से चुभाएँ।
- क्षितिज की निचली सीमा पर एक बड़े बेसिन को पकड़कर सबसे पहले सबसे नीचे से शुरू होने वाले नमूने एकत्र करें, जबकि ऊपर की मिट्टी को खुरपी द्वारा ढीला किया जाता है।
- नमूने को मिलाये और एक पॉलिथीन या कपड़े के थैले में स्थानांतरित करें और इसे लेबल करें।

प्रसंस्करण और भंडारण

- नमूना संख्या निर्दिष्ट करें और इसे प्रयोगशाला मिट्टी नमूना रजिस्टर में दर्ज करें।
- खेत से एकत्र किए गए नमूने को बड़ी गाँठों को तोड़ने के बाद एक गज की एक साफ शीट पर फैलाकर छाया में सुखाये, यदि मौजूद हों।
- मिट्टी को एक कागज या पॉलिथीन शीट पर एक सख्त सतह पर फैलाये और एक लकड़ी के मैलेट का उपयोग कर के उसके अंतिम मिट्टी के कण को तोड़कर नमूना पाउडर करें।

- 2 मिमी. चलनी के माध्यम से मिट्टी की सामग्री को छान लें।
- पाउडरिंग और छलनी को तब तक दोहराये जब तक कि छलनी पर केवल 2 मिमी. (कोई मिट्टी या ढेला) की सामग्री न रह जाए।
- छलनी से गुजरने वाली सामग्री को इकट्ठा करें और प्रयोगशाला विश्लेषण के लिए उचित लेबलिंग के साथ एक साफ काँच या प्लास्टिक कंटेनर या पॉलिथीन बैग में स्टोर करें।
- कार्बनिक पदार्थ के निर्धारण के लिए एक प्रतिनिधि उप नमूने को पीसकर 0.2 मिमी. चलनी के माध्यम से छलनी करना वांछनीय है।
- यदि नमूने सूक्ष्म पोषक तत्वों के विश्लेषण के लिए हैं तो लोहे, जस्ता और तांबे के संदूषण से बचने के लिए नमूने को संभालने में सबसे अधिक देखभाल की आवश्यकता है। पीतल की छलनी से बचना चाहिए और नमूनों के संग्रह, प्रसंस्करण और भंडारण के लिए स्टेनलेस स्टील या पॉलिथीन सामग्री का उपयोग करना बेहतर है।
- यदि नमूनों का विश्लेषण NO_3-N और NH_4-N के साथ-साथ जीवाणुओं की संख्या के लिए किया जाना है, तो मिट्टी को हवा में सुखाने से बचना चाहिए।
- खेत में नमी की मात्रा का आकलन बिना सूखे नमूने में किया जाना चाहिए या संग्रह के तुरंत बाद एक सील बंद पॉलीथीन बैग में संरक्षित किया जाना चाहिए।
- सूखे वजन के आधार पर परिणामों को व्यक्त करने के लिए प्रत्येक विश्लेषण से पहले नमूने की नमी का अनुमान लगाये।

विश्लेषण

कृषि अनुसंधान परिषद् ने दिल्ली में अपनाई गई विधियों में संशोधन करके ये विधियाँ प्रस्तावित की है, जो भारत की अनेक मृदा परिक्षण प्रयोगशालाओं में प्रयोग होती है। इन विधियों के अनुसार विभिन्न प्राप्य पोषक तत्वों की मृदा में मात्रा ज्ञात की जाती है।

मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाये कहाँ-कहाँ है ?

इस समय देश क लगभग प्रत्येक जिले में एक प्रयोगशाला है। इसके लिए आप अपने निकटतम कृषि विकास अधिकारी अथवा विकासखंड अधिकारी से सम्पर्क करें। फिर भी, पूसा नई दिल्ली स्थित मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला में किसान तथा उद्यमी इस देश के किसी भी भाग से कभी भी सम्पर्क करके मिट्टी परीक्षण तथा वैज्ञानिको द्वारा दी जा रही जानकारी का पूरा लाभ उठा सकते हैं।

खेत की मिट्टी के परीक्षण के प्रमुख लाभ

(क) यह किसान को खेत की मिट्टी के वर्तमान स्वास्थ्य और इसे सुधारने के तरीके के बारे में सूचित करता है। मिट्टी की उर्वरता मिट्टी के जैविक, रासायनिक और भौतिक गुणों से निर्धारित होती है। संरचना, मिट्टी की बनावट और रंग जैसे गुण आँखों को दिखाई देते हैं। हालांकि, मिट्टी की रासायनिक संरचना को देखना कठिन है। इसलिए, मृदा निदान की आवश्यकता है और मिट्टी का नमूनाकरण महत्वपूर्ण है। मृदा परीक्षण का उपयोग मिट्टी के पोषक स्तर और पी.एच. सामग्री को निर्धारित करने के लिए किया जाता है। इस जानकारी के साथ, किसान उर्वरक की मात्रा और सटीक प्रकार को परिभाषित कर सकते हैं, जो आपके खेत की मिट्टी में सुधार के लिए आवेदन के लिए आवश्यक है। यह आवश्यक है, क्योंकि स्वस्थ फसल उगाने के लिए उपजाऊ मिट्टी आवश्यक है।

(ख) मृदा परीक्षण से उर्वरक व्यय कम होता है आपकी मिट्टी में जिस कमी का सामना करना पड़ रहा है, उसे जानने से इस तरह के कृषि सामानों की बर्बादी शून्य हो जाएगी। आपकी फसलों और मिट्टी के लिए आवश्यक उर्वरकों की मात्रा और प्रकार किसानों को अनावश्यक अतिरिक्त उर्वरक आवेदन पर पैसा बर्बाद करने से रोकता है। इसके अलावा, पौटेशियम और फॉस्फोरस, जैसे पोषक तत्व जो अकार्बनिक उर्वरकों का हिस्सा हैं, बहुत सीमित संसाधन हैं। उनकी आपूर्ति सीमित है। जिसका अर्थ है कि भविष्य में ऐसे सीमित संसाधनों की कमी को रोकने के लिए उपयोग में सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

(ग) मृदा परीक्षण के परिणाम सीमित अति-निषेचन के लिए सही और वास्तविक पोषक तत्व को जाने बिना अपनी मिट्टी में उर्वरक लगाने से अति-निषेचन होगा। अपनी मिट्टी का परीक्षण करने से पहले और सूचित उर्वरक अनुशंसा प्राप्त करने से किसानों को अत्यधिक मात्रा में उर्वरक लगाने और संबंधित पर्यावरणीय क्षति को कम करने से रोकता है। अति-निषेचन से जलप्रदूषण, पोषक तत्वों

की लीचिंग और जलीय जीवन को अपरिवर्तनीय नुकसान हो सकता है। बस एक साधारण मिट्टी परीक्षण इन सभी नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभावों को रोक सकता है। इसके अलावा, उर्वरक का अति प्रयोग न केवल पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता है, बल्कि इससे उर्वरक फसलों को भी जला सकता है।

(घ) किसान आसानी से मिट्टी के क्षरण से बच सकते हैं। शोध से यह अनुमान लगाया गया है कि असंतुलित मृदा प्रबंधन के कारण हर साल 24 अरब टन से अधिक उपजाऊ मिट्टी अपरदन के कारण नष्ट हो जाती है। इसके अलावा, भूमिक्षरण अनुमानित 1.5 बिलियन लोगों की आजीविका और स्वास्थ्य को सीधे प्रभावित करता है। मिट्टी की बहाली एक महँगी, कठिन और समय लेने वाली प्रक्रिया है। इसलिए, मृदा परीक्षण के माध्यम से बेहतर मृदा प्रबंधन एक आसान मार्ग है, और उर्वरकों की सही मात्रा का उपयोग कुशल और आर्थिक रूप से उचित है।

(ङ) उपजाऊ मिट्टी वाले किसान दुनिया की बढ़ती आबादी को खिलाने में योगदान दे सकते हैं। वर्तमान पीढ़ी मिट्टी पर पहले से कहीं अधिक दबाव डालती है। पैदावार पैदा करने के लिए उपजाऊ मिट्टी की जरूरत है, जो दुनिया की लगातार बढ़ती आबादी को खिलाएगी। बेहतर मृदा स्वास्थ्य का तात्पर्य अधिक फसलों से है, संभावित रूप से दुनिया के खाद्य सुरक्षा मुद्दों को बंद करना। यह अंततः लाखों लोगों के लिए एक बेहतर जीवन लाएगा। मृदा परीक्षण मृदा प्रबंधन की पहली सीढ़ी है। गतिविधि किसानों को बहुमूल्य जानकारी देती है, जो उन्हें मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करने में मदद करती है। स्वस्थ मिट्टी अंततः स्वस्थ फसलों का संकेत देती है। मृदा परीक्षण का महत्व प्रारंभिक वर्षों सें ही अस्तित्व में रहा है। खेती में ध्यान देने योग्य विभिन्न प्रकार की मिट्टी और मिट्टी के गुणों में भिन्नता महत्वपूर्णकारक हैं। मिट्टी की बनावट, मिट्टी की नमी और मिट्टी के रसायन इस बात के निर्धारक हैं कि कौन सी फसलें उगाई जा सकती हैं, और खेत कितनी उपज पैदा कर सकता है।

निष्कर्ष

मृदा नमूनाकरण और परीक्षण अत्यधिक जानकारी पूर्ण हो सकते हैं। अच्छी तरह से संचालित मिट्टी के नमूने से प्राप्त जानकारी मिट्टी में होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनो (उर्वरता, उर्वरक सिफारिशें विकसित करना और खेत पर पोषक तत्वों की दक्षता में सुधार) की निगरानी में उपयोगी हो सकती है। जिनका उचित समय पर प्रबंधन करके किसान अपने खेती की लगत को कम कर सकता है तथा अपनी भूमि से अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकता है।

❖❖

पोषण सुरक्षा के लिए किचन गार्डनिंग

रजनी सोलंकी[1]*, बी. पी. बिसेन[2] एवं मेंघा विश्वकर्मा[3]

[1 & 3]श्री वैष्णव विद्यापीठ विश्वविद्यालय, इंदौर

[2]जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : rajnisolanki82@gmail.com

परिचय

किचन गार्डन या होम गार्डन या 'न्यूट्रिशन गार्डन' हर घर का एक अनिवार्य घटक है। यह मुख्य रूप से परिवार के उपयोग के लिए हर दिन आवश्यक मात्रा और ताजे फल और सब्जियों की निरंतर आपूर्ति के लिए अभिप्रेत है। पुराने समय से ही घर के पास एक छोटे से भूखंड का उपयोग मौसम के अनुसार विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ उगाने के लिए किया जाता रहा है। बाजार से प्राप्त फलों और सब्जियों में ताजगी की कमी होती है और इसमें अस्वीकार्य स्तर पर कीटनाशक होते हैं। विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ प्राप्त करने के लिए उपलब्ध भूमि में कई सब्जियाँ उगाई जाती हैं। परिवार के सदस्य ही ज्यादातर किचन गार्डन में काम करते हैं। बगीचे का क्षेत्र, लेआउट एवं चयनित फसलें आदि भूमि की उपलब्धता और प्रकृति पर निर्भर करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में भूमि सीमित कारक नहीं होती है और उद्यान की स्थापना की जा सकती है। शहरी क्षेत्रों में, भूमि एक सीमित कारक है और बहुत बार फसलें सीमित उपलब्ध क्षेत्र में या इमारतों की छतों में उगाई जाती हैं। शहरों में गमलों में या सीमेंट की बोरियों में फसलों की खेती भी संभव है।

किचन गार्डन क्यों?

लोगों को स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थ आहार का होना बहुत जरूरी है। एक स्वस्थ आहार का अर्थ है–चावल, रोटी, दालें, सब्जियाँ, जड़ी-बूटियाँ एवं फल आदि का संतुलित मिश्रण। सब्जियाँ एक अच्छे आहार का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, क्योंकि इनमें शरीर के कई कार्यों के लिए विभिन्न पोषक तत्व होते हैं। ऊर्जा और रोग से सुरक्षा के लिए सब्जियाँ एक आवश्यक भूमिका निभाती हैं। सब्जियाँ विशेष रूप से युवाओं, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण होती हैं।

किचन गार्डन के अनोखे फायदे

- परिवार की संतुलित पोषण आवश्यकता को पूरा करने के लिए फलों, सब्जियों, जड़ों और कंदों की ताजा और सर्वोत्तम गुणवत्ता की उपलब्धता सुनिश्चित करता है।
- सभी कीटनाशक अवशेषों और रसायनों से मुक्त किचन गार्डन फलों और सब्जियों की आपूर्ति करती है।
- किचन गार्डन में उगाई जाने वाली सब्जियाँ पौष्टिक, ताज़ी होती हैं। साथ ही साथ यह गंदे बाजारों में होने वाले कीटाणुओं के संक्रमण के लिए उत्तरदायी नहीं होती हैं।
- सब्जियों की खरीद पर होने वाले खर्च को बचाने और इलाज में बचत करने में मदद करती है।
- घर के बगीचे से काटी गई सब्जियों का स्वाद बाजार से खरीदी गई सब्जियों से बेहतर होता है।
- किचन गार्डन व्यायाम का सबसे अच्छा साधन है।
- यह मनोरंजन का अच्छा स्रोत है।
- किचन गार्डन में परिवार के सभी सदस्य मिलकर कार्य करते हैं, जिससे उनके आंतरिक सम्बन्ध मजबूत होते हैं।
- यह बच्चों को श्रम की गरिमा के बारे में जागरूक करने में सहायक होती है।
- इसके देखभाल के लिए ज्यादा तकनीकी कौशल की आवश्यकता नहीं होती है।
- किचन गार्डन हमें प्रकृति से प्यार करना, उनके संरक्षण में रुचि पैदा करना, हमें जीवन में प्रकृति का सम्मान करना और उनके प्रति अधिक जिम्मेंदार बनने के लिये प्रोत्साहित करता है।
- यह स्वयं के द्वारा कुछ उपयोगी उगाने की संतुष्टि प्रदान करते हैं।
- आवासीय परिसर के भीतर उपलब्ध भूमि का प्रभावी ढंग से किचन गार्डन के लिए उपयोग किया जा सकता है, जिससे घर के पास स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण बन सके।

- स्वीपिंग, किचन स्क्रैप और घरेलू पानी जैसे-अपशिष्ट संसाधनों का बेहतर उपयोग बगीचे में पुनर्नवीनीकरण किया जा सकता है।
- इसे पर्यावरण के अनुकूल बनाया जा सकता है।

ध्यान देने योग्य बातें

किचन गार्डन को आसानी से बनाने और प्रबंधित करने के लिए और सर्वोत्तम उत्पादन देने के लिए निम्नलिखित चीजें महत्वपूर्ण हैं:

(क) स्थान और आकार

(ख) ख़ाका डिजाईन

(ग) संरक्षण

(घ) जल प्रबंधन

(ङ) उपजाऊपन

(च) बीज और पौध

बगीचे के अच्छे प्रबंधन के लिए इन सबका ज्ञान होना आवश्यक है। तभी हम अपने किचन गार्डन को और सफल बना सकते हैं।

योजना और प्रबंधन

स्थान और आकार

- शहरों में भूमि की कमी के कारण किचन गार्डन के लिए साइट के चयन का विकल्प सीमित है। आमतौर पर आसान निगरानी और प्रबंधन, उचित सिंचाई, जल निकासी की सुविधा और खुले क्षेत्र में भरपूर धूप प्राप्त करने के लिए घर के पिछवाड़े में एक किचन गार्डन स्थापित किया जाता है।
- वनस्पति उद्यान का आकार भूमि की उपलब्धता, परिवार में व्यक्तियों की संख्या और इसकी देखभाल के लिए उपलब्ध खाली समय पर निर्भर करता है। पाँच सदस्यों वाले परिवार के लिए साल भर में सब्जियाँ उपलब्ध कराने के लिए लगभग 250 मी ^{2} भूमि पर्याप्त है। एक वर्गाकार भूखंड या भूमि की लंबी पट्टी के बजाय एक आयताकार उद्यान को प्राथमिकता दी जाती है।

ख़ाका डिज़ाइन

बगीचे का लेआउट और प्रत्येक मौसम के लिए उपयुक्त फसलों का चयन भूमि की उपलब्धता और क्षेत्र में प्रचलित कृषि-जलवायु परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जलवायु और मौसमी परिवर्तनों के आधार पर, लेआउट और फसल आवंटन में संशोधन किया जाता है। लेआउट तैयार करते समय ध्यान में रखे जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण तथ्य हैं:

- बारहमासी सब्जियाँ जैसे सहजन, करी पत्ता और बिलिंबी को बगीचे के एक तरफ आवंटित किया जाना चाहिए ताकि वे न तो शेष पौधों को छाया दें और न ही वे अंतर-सांस्कृतिक कार्यों में हस्तक्षेप करें। छायादार सब्जियों को बारहमासी भूखंड में लगाया जा सकता है।
- बारहमासी भूखंडों में सीताफल, अमरूद, पपीता, केला एवं नींबू आदि पेड़ की फसलें उगाये।
- खेत रसोई के कचरे के प्रभावी उपयोग के लिए किचन गार्डन के एक कोने पर एक या दो कम्पोस्ट पिट उपलब्ध कराए जा सकते हैं।
- बारहमासी फसलों के लिए क्षेत्र आवंटित करने के बाद, शेष भाग को वार्षिक सब्जी फसल उगाने के लिए 6-10 समान भूखंडों में विभाजित किया जाता है। स्थान के प्रभावी उपयोग के लिए सहयोगी फसल या परिग्रहण फसल, अंतर फसल और मिश्रित फसल का पालन किया जा सकता है।
- केंद्र के साथ-साथ चारों तरफ पैदल पथ प्रदान करें।
- जड़ और कंद फसलों को उगाने के लिए मेंड़ों का उपयोग करें, जो अलग-अलग भूखंडों को अलग करते हैं।
- एक किचन गार्डन में अधिक उपज देने वाली किस्मों की तुलना में लंबी अवधि और स्थिर उपज देने वाली किस्मों को वरीयता दी जानी चाहिए, जिन्हें निरंतर देखभाल की आवश्यकता होती है।
- **फसल व्यवस्था :** प्रत्येक उप-भूखंड में फसलों का आवंटन या व्यवस्था करते समय, रोपण या मौसम के आदर्श समय पर किस्मों फसलों को लगाने का ध्यान रखना चाहिए।
- **फसल चक्रण :** एक ही भूखंड में सब्जी की फसल को लगातार नहीं लगाना चाहिए। हर मौसम के बाद मिट्टी जनित संक्रमण और कीट प्रसार से बचने के लिए इसे दूसरी सब्जी की फसल के साथ घुमाना चाहिए।
- उन फसलों का चयन करें जो क्षेत्र की जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल हों। फसल का चयन करते समय परिवार

के सदस्यों की वरीयता पर भी विचार किया जा सकता है

- पौधों के बीच की आपसी दूरी न्यूनतम होनी चाहिए, ताकि हम प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक फसलें शामिल कर सकें। किचन गार्डन में बौनी और कम फैलने वाली किस्मों को प्राथमिकता दी जाती है।

किचन गार्डन में फसल पैटर्न

फल और सब्जियां मनुष्य के संतुलित आहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक पोषक तत्व प्रदान करते हैं। अपने बगीचे के फल और सब्जियां संतुष्टि देते हैं और मूल्यवान रेशे भी प्रदान करते हैं, जो पाचन में मदद करते हैं।

भूखंडों	मई-जून से सितंबर अक्टूबर	सितंबर-अक्टूबर से दिसंबर-जनवरी	दिसंबर-जनवरी से मई-जून
1	वार्षिक फसलें (अ) करेला (ब) बैंगन और मिर्च (स) लौकी (य) जंगली अर्द्ध अनुगामी लोबिया (र) भिन्डी (ल) कद्दू	 यार्ड लांग बीन शिमला मिर्च, चुकंदर, पालक कद्दू टमाटर लौकी भिन्डी	 चिचिण्डा भिन्डी चौराई खीरा मिर्च , बैंगन यार्ड लाँग बीन
2	बारहमासी फसलें (अ) सब्जियाँ (ब) फल	 सहजन, मीठा नीम (करी पत्ता), बिलिम्बी, पाक केला केला, नींबू, माल्टा नींबू, पपीता, वेस्ट इंडियन चेरी, अमरूद आदि।	
3	बारहमासी भूखंडों में अंतर-फसलें (अ) फल (ब) सब्जियाँ (स) मसाले	 अनन्नास अरबी, हाथी पैर याम (सूरन), याम, चीनी आलू, टैपिओका (शिमला आलू), पालक बारहमासी मिर्च, अदरक, हल्दी, मेंथी, धनिया	
4 5	पैदल रास्तों की सीमा बाड़ सदाबहार	चौलाई, लोबिया (चवली), सेम सहजन, मीठा नीम (करी पत्ता), चेककुरमानिस, टिंडोरा (परवल), अगाथी	चवली मूली (जून-अगस्त) मीठा नीम
	बरसात का मौसम सर्दियों का मौसम बरसात से ग्रीष्म तक (जुलाई-फरवरी)	तलवार बीन, लौंग बीन तोरई, लंबी बीन डोलिचोस बीन (सेम), पंखों वाला बीन	

संरक्षण

- पशुओं के लिए क्षेत्र में प्रवेश करना संभव नहीं होना चाहिए। स्थाई बाड़ बनाई जाए। कांटेदार पौधों को काटा जा सकता है और बाड़ बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है लेकिन बगीचे की रक्षा के लिए एक जीवित बाड़ लगाने का सबसे अच्छा तरीका है।
- हर तरफ बाड़ कंटीले तार से या सजीव पौधों से बनाई जानी चाहिए। चीकुर्मनी, आइवी लौकी, डोलिचोस बीन, अनुगामी लोबिया और तोरई को चारो तरफ लगाकर बाड़ बनाई जा सकती है। बाड़ के साथ 1.0 मीटर की दूरी पर अगाथी (सेसबनिया ग्रैंडिफ्लोरा) लगाकर बाड़ को मजबूत बनाया जा सकता है।
- बाड़ के किनारे करेला, बीन्स, लौकी, खीरा, कद्दू, रतालू आदि जैसी लताएँ और चढ़ाई वाली सब्जियाँ लगाई जा सकती हैं।
- चूँकि ताज़ी सब्जियों का सीधे उपयोग किया जाता है, स्वच्छ खेती का पालन करना, कीट रोग प्रभावित पौधों को यांत्रिक रूप से हटाना, प्रतिरोधी किस्मों का रोपण, जैविक नियंत्रण, जैव-कीटनाशकों या जैव-कवकनाशी का उपयोग, कीट के लिए कीट जाल और रोग नियंत्रण में रसायन को कम करने के लिए एक किचन गार्डन अच्छा विकल्प है।
- कीट और रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करना हमेंशा अच्छा होता है। प्रमाणित स्रोतों से ही बीज और अन्य रोपण सामग्री की खरीद करें।
- सब्जियों की फसलों की अच्छी वृद्धि और विकास के लिए जब कभी आवश्यकता हो, निराई-गुड़ाई , डंठल, थिनिंग, अर्थिंग अप आदि करें।

जल प्रबंधन

- किचन गार्डन के लिए पर्याप्त नमी प्रदान करना महत्वपूर्ण है। उपलब्ध नमी को बचाने और बढ़ाने के निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं।
- **मल्चिंग :** हवा और सूरज को नंगी मिट्टी को सुखाने से रोकता है।
- **विंडब्रेक :** हवा मिट्टी को सुखा देती है, इसलिए हवा को रोकने से मिट्टी की नमी को बचाने में मदद मिलती है।
- एक विस्तृत क्षेत्र में केवल थोड़ा सा पानी डालने से केवल सतह ही नम रहेगी। गर्मी के मौसम में शाम या रात में सिंचाई करें, दिन में नहीं।
- किचन से अपशिष्ट जल एकत्र करना और उसका उपयोग करना बगीचे को पानी देने के लिए पर्याप्त हो सकता है। साथ ही नलों के सीधे पानी का उपयोग भी किचन गार्डन में किया जा सकता है।

उपजाऊपन

- चूँकि किचन गार्डन में गहन और निरंतर फसल की जाती है, इसलिए पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद को बार-बार लगाने से मिट्टी की उर्वरता और बनावट को बनाए रखा जा सकता है। किचन या होम गार्डन के लिए जैविक खेती पर जोर देना चाहिए। हालांकि अच्छी फसल के लिए रासायनिक खाद भी जरूरी है।
- रसोई के बगीचों में, अच्छी तरह से सूखे या कम्पोस्ट की गई जैविक खाद और वर्मीकम्पोस्ट को हमेंशा प्राथमिकता दी जाती है। रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग न्यूनतम मात्रा तक ही सीमित रहना चाहिए।
- मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए फसल चक्र अपनाये।
- बायोडिग्रेडेबल कचरे को जैविक खाद में बदलने के लिए नियमित रूप से कंपोस्टिंग का अभ्यास करें।
- जैविक खेती में उपयोग के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक सामग्री जैसे फार्मयार्ड खाद, पोल्ट्री खाद, बकरी खाद, हरी पत्तियाँ, जैविक केक, मछली भोजन और हड्डी भोजन आदि को प्राथमिकता दी जा सकती है। खेत की खाद को बेसल खुराक के रूप में और जैविक सांद्र जैसे जैविक केक (खली), कुक्कुट खाद, वर्मिन-कम्पोस्ट आदि को शीर्ष ड्रेसिंग के रूप में लागू करें।

बीज और अंकुर

- एक किचन गार्डन स्थानीय, पारंपरिक सब्जियों से बहुत अच्छा भोजन प्रदान कर सकता है और यह महत्वपूर्ण है कि इन स्थानीय किस्मों को न खोये।
- अच्छे बीज से किचन गार्डन में रोपाई के लिए अच्छे, स्वस्थ पौध उगाने में सक्षम होना महत्वपूर्ण है।
- पैकेज के निर्देशों के अनुसार बीज बोये।

- सुझाव से अधिक गहरा न लगाएँ (बहुत गहरा न लगाएं, बीजों को से छः इंच मिट्टी से ढक दें)।

कटाई

- परिवार की दैनिक आवश्यकता के अनुसार उपज (सब्जी फल) की तुड़ाई कटाई करें।
- गुणवत्तापूर्ण उत्पाद प्राप्त करने के लिए आम तौर पर कटाई सही अवस्था में की जाती है।

निष्कर्ष

सब्जियों की बागवानी आपके जीवन में कई लाभ ला सकती है। एक महान शौक होने के अलावा, यह आपको अधिक पर्यावरण के प्रति जागरूक होने में मदद कर सकता है और स्वस्थ खाने को आसान बनाता है। अच्छा भोजन प्रदान करने के अलावा बागवानी कई लाभ प्रदान करती है। व्यायाम, ताजी हवा, संतुष्टि और तनाव से राहत का आनंद लेना भी याद रखें, जो आपके घर के बगीचे में सब्जियाँ उगाने से मिल सकता है। एक उत्कृष्ट माली बनने का एकमात्र निश्चित तरीका बागवानी है – 'काम करना और अपनी सफलताओं और असफलताओं से सीखना'।

❖❖

जलवायु परिवर्तन के परिवेश में लाभ हेतु हाइड्रोपोनिक (मृदा रहित खेती)

महेन्द्र जड़िया[1]*, बलवीर सिंह[2] एवं प्रमोद कुमार वर्मा[3]

[1]एल. एन.सी.टी. विश्वविद्यालय, भोपाल

[2 & 3]रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन

पत्राचारकर्ता : mahendrajadia89@gmail.com

परिचय

बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो गया हैं कि उपलब्ध क्षेत्र में उत्पादन के ऐसे तरीकों को खोजा जाए, जिसमें बिना मिट्टी के भी फसल तैयार की जा सके या ऐसे क्षेत्रों में जहाँ भूमि में उर्वराशक्ति की कमी हो वहाँ ऐसी विशिष्ट विधियों द्वारा उत्पादन किया जा सके। भारत एवं विदेशों में किये गये प्रारंभिक प्रयोगों से इस बात की पुष्टि हुई है कि यदि खेती के लिए मिट्टी उपलब्ध न हो तो पानी में आवश्यक पोषक तत्वों को मिलाकर पौधो को उगाया जा सकता हैं, जिससे हम अच्छी उपज एवं गुणवत्ता वाली फसलों को वर्ष के किसी भी समय में उगा सकते हैं तथा अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं।

हाइड्रोपोनिक्स एक मृदारहित खेती की वह विधि है, जिसमें न कि सिर्फ जल में पोषक तत्वों को मिलाकर पौधो को संवर्धित, पुष्पित एवं पल्लवित किया जाता है बल्कि इसमें किसी भी तरह के संवर्धित माध्यम जैसे वर्मीकुलाइट, ग्रेवल्स, पीट, रॉकवूल इत्यादि की आवश्यकता नहीं पड़ती है। मृदारहित खेती की तकनीक का इतिहास लगभग 250 वर्ष से भी अधिक पुराना है परंतु व्यवसायिक तरीकों से इसका उपयोग पहली बार अमेंरिकी सेनाओं द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान किया गया था।

हाइड्रोपोनिक्स शब्द सबसे पहले डा. विलियम एफ. जेरिक द्वारा किया गया, जिन्होंने सन् 1929 में साढ़े सात मीटर ऊँचे टमाटर के पौधे को इस माध्यम में लगाने में सफलता प्राप्त की थी। हाइड्रोपोनिक्स बिना मिट्टी के पौधो को केवल पानी या बालू या ककड़ो के बीच नियंत्रित जलवायु में उगाने की विधि को कहते है। हाइड्रोपोनिक (मृदारहित खेती) शब्द की उत्पत्ति जो एक ग्रीक शब्द से हुई है। यह दो शब्दो से मिलकर बना है जिसको हाइड्रो + पोनोस, हाइड्रो का अर्थ पानी जबकि पोनोस का अर्थ कार्य से है।

सन् 1960-70 दशक के दौरान हाइड्रोपोनिक्स का व्यवसायीकरण कई देशो में हो चुका था, जिनमें इज़राइल, अमेंरिका, स्पेन, नीदरलैण्ड, बेलजियम, डेनमार्क, जापान, रूस, जर्मनी, हालैण्ड, ईरान इत्यादि प्रमुख है।

मृदारहित खेती (हाइड्रोपोनिक्स) की विभिन्न तकनीकें

विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों जैसे स्थान एवं संसाधन की उपलब्धता, उचित संवर्धित माध्यम, अपेक्षित उपज गुणवत्ता इत्यादि को देखते हुए मृदारहित खेती विभिन्न प्रकार से की जाती है, जिसको निम्नलिखित प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है।

(क) घोल संवर्धन अथवा तरल मृदारहित खेती

(अ) परिभ्रमण विधि

यह मृदारहित खेती की नई तकनीक हैं, जिसके तहत जड़ों को सीधे तत्वों के सम्पर्क में लाया जाता हैं। इस विधि के द्वारा अतिरिक्त घोल को पुनः प्रयोग में लगाया जा सकता है। इस विधि में एक पोषक पम्प लगा होता है, जो विभिन्न पॉलीविनाइल क्लोराइड (पी.वी.सी.) पाईपो के द्वारा जुड़ा होता है। इन्हीं पाइपो के द्वारा तत्वों को पौधों की जड़ों तक पहुँचाया जाता हैं।

(ब) अपरिभ्रमण विधि

इस विधि में पोषक तत्वों के अतिरिक्त घोल को उपयोग में नहीं ला सकते हैं। यह एक बहुत ही आसान मृदारहित खेती की विधि है, इस विधि को दो भागों में बाँटा गया हैं।

(i) जड़ दबाव तकनीक

इसके तहत पौधों को छोटे गमलों में उगाया जाता है तथा गमलों को इस तरह से रखा जाता है कि वे पोषक तत्वों के घोल में आधी ऊँचाई तक डूबे रहें। यह विधि बहुत ही सरल

एवं कम खर्चीली है क्योंकि इसमें पाइप एवं पम्प की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यह विधि जड़ वाली फसलों जैसे मूली, गाजर, शलजम, चुकन्दर, इत्यादि के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

(ii) बहाव तकनीक

इस तकनीक में पौधों को छोटे गमलों में उगाया जाता है जो कि किसी विशेष प्रकार की पट्ठी से जुड़े होते हैं तथा इन गमलों को पोषक तत्वों से भरे कन्टेनर में इस प्रकार से रखा जाता है ताकि वे उसमें तैरते रहें।

(ख) ठोस संवर्धन अथवा एकत्रित पद्धति

इस विधि में विभिन्न प्रकार के उन क्रियाहीन ठोस माध्यमों का उपयोग किया जाता हैं, जिनकी उपलब्धता आसानी से हो सके और साथ ही साथ उनमें पानी रोकने की क्षमता अधिक हो और रोगमुक्त हो। इस प्रकार के कई माध्यम हैं जैसे- ग्रेवल्स, रॉकवुल, चावल की भूसी, बुरादा, नारियल फाइबर, नारियल के छिलके का बुरादा, पीटमॉस, पर्लर्लाइट और वर्मीकुलाइट इत्यादि। इन माध्यमों को उपयोग करने से पहले इनका निर्जमीकरण करना अति आवश्यक है। इस विधि को विभिन्न भागों में बाँटा गया है।

- थैला टांगन तकनीक
- थैला वृद्धि तकनीक
- खाई तकनीक
- गमला तकनीक

(ग) हवादार विधि

इस विधि के तहत पौधों को इस प्रकार से उगाया जाता है, ताकि इनकी जड़ हवा में झूलती रहे। जिसमें पौधे एक पट्टी में लगे होते हैं। इस पट्टी की संरचना ऐसी होती है, जो कि प्रकाश को पौधों की जड़ो तक आने से रोक देती है, जिससे जड़ो का विकास पूर्णरूप से संभव हो सके। इस तकनीक में पोषक तत्वों का छिड़काव धुन्ध के रूप में कुछ समय के लिए प्रत्येक 2 से 3 मिनट के अन्तराल पर करते हैं। यह विधि पत्तेदार सब्जियों के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है।

मृदाहीन खेती की मूलभूत आवश्यकताएँ

- पोषक घोल जिसमें प्रत्येक मुख्य एवं सूक्ष्म तत्व उपस्थित हो, जो कि पौधो की वृद्धि एवं विकास में सहायक होते है।
- पोषक घोल की बफर क्रिया अपेक्षित होनी चाहिए ताकि जड़ों को कोई नुकसान न हो सके।
- पोषक घोल का तापमान एवं वातन इस प्रकार का होना चाहिए जिससे कि जड़ों की वृद्धि पर किसी भी प्रकार प्रतिकूल प्रभाव ना पड़े।
- पोषक घोल में उपयुक्त जल की विशेषता बहुत महत्वपूर्ण है ताकि अपेक्षित पी.एच. मान एवं वैद्युत चालकता हासिल की जा सके।

मृदारहित खेती की विशेषतायें

मृदारहित खेती पारम्परिक खेती की विधियों से कई मामलों में बेहतर है। इसके द्वारा हम पौधे की वृद्धि के लिए समुचित एवं आदर्श अवस्था प्रदान कर सकते है। इस प्रकार मृदा रहित खेती करने हमें मृदा-जनित बीमारियों को रोकने में सहायता तो मिलती ही है एवं अधिक गुणवत्तायुक्त उपज भी प्राप्त होती है।

लाभ

इसके विभिन्न लाभ निम्नवत है-

- ऐसी जगहों पर जहाँ उपयुक्त मृदा का अभाव है, वहाँ उद्यानिकी फसलों को उगाया जा सकता है।
- मृदायुक्त खेती में प्रयुक्त संसाधन जैसे निराई, गुड़ाई, सिंचाई एवं अन्य मृदा संबंधित क्रियाओं पर आने वाला खर्च नहीं करना पड़ता है।
- इसके अंतर्गत अधिकतम उपज प्राप्त कर सकते हैं, जो कि आर्थिक रूप से लाभप्रद है।
- इससे वर्ष में किसी भी समय कोई भी पौधा उगाया जा सकता है।
- इसके अन्तर्गत पौधे में फलन शीघ्र होता हैं, उपज एवं उत्पादकता में भी वृद्धि होती है।
- इससे उच्च गुणवत्ता वाली सब्जियों एवं फूलों का उत्पादन संभव हैं।
- इस विधि से जल एवं पोषक तत्वों का संरक्षण होता हैं, यह प्रदूषण को नियंत्रित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।
- इस विधि से मृदाजनित बीमारियों को आसानी से रोका जा सकता है।
- पौधे की वृद्धि के लिए नियंत्रित वातावरण तैयार किया जा सकता है, जिसके तहत तापमान, प्रकाश, आर्द्रता एवं वायुमण्डलीय गैसों के घटक को इच्छानुसार प्रवर्तित किया जा सकता है।

सारणी 1: विश्व में मृदारहित खेती का क्षेत्रफल

देश	क्षेत्रफल (है.)	मुख्य माध्यम	मुख्य फसलें
नीदरलैण्ड	10,000	रॉकवूल	टमाटर, मूली, स्ट्रॉबेरी, बैंगन, गुलदाउदी,गुलाब
स्पेन	4,000	पर्ललाइट, राकमूल, रेत	पालक, खीरा, टमाटर, मिर्च
कनाडा	1,574	रॉकवूल, पर्ललाइट	टमाटर, खीरा, पालक, मिर्च
फ्रांस	1,000	रॉकवूल	खीरा, मिर्च, टमाटर, बैंगन
इजराइल	650	पर्ललाइट, रेत	टमाटर, खीरा, पालक, मिर्च
बेल्जियम	600	रॉकवूल	खीरा, मिर्च, टमाटर, बैंगन, कर्तित पुष्प
जर्मनी	600	रॉकवूल	स्ट्रॉबेरी, कर्तित पुष्प, टमाटर, मिर्च, खीरा, तरबूज
न्यूजीलैण्ड	500	रॉकवूल, सॉ, डस्ट, कोकोपीट	स्ट्रॉबेरी, खीरा, ककड़ी, मिर्च, रेत, परलाइट,तरबूज
ब्रिटेन	480	रॉकवूल	टमाटर, खीरा, पालक
दक्षिण	420	छाल, रॉकवूल	टमाटर, खीरा, पालक, कर्तित अफ्रीकापुष्पक
इटली	400	रॉकवूल	गुलाब, टमाटर, स्ट्राबेरी
अमेरिका	400	पर्ललाइट, ग्रेवल्सर	टमाटर, खीरा, पालक
चीन	120	ग्रेवल बेड	टमाटर, खीरा, पालक, पुष्पीय पौधे

- इसमें पोषक तत्वों का दक्षतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है।

हानियाँ

हाइड्रोपोनिक खेती के निम्नलिखित हानियाँ है-

- अन्य प्रकार की खेती की विधियों की तुलना में इस प्रकार की खेती की विधि को स्थापित करने में प्रचुरमात्रा में बहुत अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है।
- इसके लिए दक्ष एवं कुशल श्रमिकों की आवश्यवकता पड़ती हैं।
- इस विधि में थोड़ी सी भी लापरवाही होने पर नये रोगों के प्रसार की संभावना काफी बढ़ जाती हैं।
- इसके अत्यधिक व्यय को देखते हुए इसका उपयोग उच्च गुणवत्ता वाली फसलों तक ही सीमित हैं।

पोषक घोल तैयार करना

पोषक घोल को आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार से तैयार किया जा सकता है। किसी भी घोल को तैयार करने से पहले इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि घोल की सामंजस्यता बरकरार रहे।

सावधानियाँ

- इस प्रकार की खेती में तापमान सदैव नियंत्रित होना चाहिए क्योंकि उच्च तापमान इसके लिए घातक है। तापमान को नियंत्रित करने के लिए जड़ों पर जल की फुहार, एगजास्ट

पंखों आदि का प्रयोग करना चाहिए।

● वैद्युत चालकता अधिक (3.0 मिली. मोस/सेंटीमीटर) से अधिक नहीं होनी चाहिए।

● प्रकाश की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए।

● कृत्रिम परागण की सुविधा होनी चाहिए। इसके लिए वृद्धि नियामक तथा यांत्रिक वाइब्रेटर का उपयोग करना चाहिए।

● पर्यावरण में अचानक परिवर्तन, गलत पोषक तत्वों की मात्रा या सिंचाई की अनियमितता पौधों में कार्मिकीय ब्याधि के लक्षण उत्पंन्न करते हैं।

● तकनीकी त्रुटियों के कारण सामान्यनाशी जीव एवं बीमारियाँ पौधों को प्रभावित कर सकती हैं।

सारणी 2. मृदारहित खेती के लिए अनुकूल फसलें

फसलें	फसलों के नाम
पत्तेदार सब्जियाँ	पालक
सलाद सब्जियाँ	टमाटर, मिर्च, खीरा, तरबूज, मूली, खरबूजा
अनाज वाली फसलें	धान, मक्का, ज्वार
चारे वाली फसले तथा घासे	अल्फा - अल्फा, जौ, कारपेट ग्रास, बरमुडाग्रास
फल वाली फसलें	स्ट्रॉबेरी, रैस्पबेरी
पुष्पीय फसलें	गेंदा, गुलाब, गुलदाउदी, ऑर्किड, कारनेशन, जरबेरा
औषधीय फसलें	एलोवेरा, होनवार्ट

मृदारहित खेती का भविष्य

मृदारहित खेती एक बहुत प्रयोगात्मक विधि हैं। एक उन्नति पद्धति होने के कारण यह विभिन्न औद्यानिक फसलों की उत्पादकता में 6 से 10 गुना तक वृद्धि कर सकती हैं। इसका क्षेत्रफल दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा हैं। विकासशील देशों तथा उष्ण क्षेत्रों में इसकी प्रसार की संभावनाये अत्यधिक है। विकासशील देश जैसे भारत के शहरी इलाकों में उच्च गुणवत्ता वाली औद्यानिक फसलों के प्रसार में अधिक संभावनायें हैं। वर्तमान में औद्यानिक फसलों की उत्पादकता में विकसित देश प्रमुख हैं। कुछ देश जैसे मैक्सिको और चीन इसका उत्पादन निर्यात के लिए करते हैं। अतः भविष्य में भी इस तरह की उच्च गुणवत्ता वाली औद्यानिक फसलों के उत्पादन के लिए हाइड्रोपोनिक स्थापित करने की प्रबल संभावना हैं।

निष्कर्ष

मृदारहित खेती का महत्व हमारे देश व अन्य देशो तथा राज्यों में जहाँ पर पानी की कमी होती है या शुष्क जलवायु है इसके साथ ही जैसे राजस्थान में चारे जैसी समस्या रहती है वहाँ पर मृदारहित खेती की तकनीकों को अपनाकर फसलों का उत्पादन किया जा सकता है। इसके साथ-साथ परम्परागत उद्यानिकी फसलों में अधिक पानी की आवश्यकता होती है, लेकिन इस तकनीक का उपयोग करते हुए हम 10 से 20 प्रतिशत पानी का ही उपयोग करते है, जिसके कारण बहुत अधिक मात्रा में जल की बचत होती है। इस विधि का उपयोग करके हम अपने घरों की छतों पर सब्ज़ियों एवं फूलो वाली फसलों का उत्पादन कर सकते है जो हमारे लिए अत्यधिक लाभकारी हो सकती है।

❖❖

मिट्टी की जाँच कराये, किसी भी फसल से बम्पर पैदावार लें

खलील खान[1]*, वी. के. कनौजिया[2] एवं अमर सिंह[3]

[1, 2 & 3]कृषि विज्ञान केन्द्र, कन्नौज, प्रसार निदेशालय

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

पत्राचारकर्ता : khankhali64@gmail.com

परिचय

उर्वरकों तथा भूमि सुधारकों की मात्रा के आकलन हेतु मिट्टी के यांत्रिक, भौतिक एवं रासायनिक विश्लेषण की प्रक्रिया को मृदा स्वास्थ्य परीक्षण कहते हैं। पौधों के समुचित वृद्धि, विकास एवं पोषण के लिये कुल 17 तत्वों की आवश्यकता होती है। जिनमें कार्बन, हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन पौधे वायु एवं जल से ग्रहण करते हैं। शेष 14 तत्वों को पौधे भूमि से ग्रहण करते हैं। इनमें से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश का प्रयोग पौधे सबसे अधिक करते हैं। अतः इन्हें मुख्य पोषक तत्व के नाम से जानते हैं। कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सल्फर भी पौधों के पोषण में आवश्यक होते हैं, जिन्हें द्वितीयक या गौण पोषक तत्व कहते हैं। इनके अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्वों में जिंक, आयरन, कॉपर, मैगनीज, बोरान, मालीब्डेनम, क्लोरीन एवं निकिल भी पौधों के विकास एवं पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

मृदा परीक्षण परिणामों से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि रासायनिक खादों का अधिक एवं असन्तुलित प्रयोग के कारण कार्बन और फॉस्फोरस के अतिरिक्त सल्फर और जिंक की अधिक कमी हो गई है, जिसके कारण मृदा स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

मृदा नमूना लेने के लिए आवश्यक उपकरण एवं सामग्री

खुर्पी, फावड़ा, आगर, पैमाना, बाल्टी, लेबल, कपड़े की थैली।

मृदा परीक्षण हेतु नमूना लेने की विधि

फसल कटने के तुरन्त बाद मृदा नमूना लेने का बहुत उपयुक्त समय होता है। चूँकि एक खेत की मिट्टी भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होती है। अतः नमूना ऐसा होना चाहिये जो कि पूरे खेत में समान प्रतिनिधित्व करता हो। नमूना ऐसी जगह से लें जहाँ खाद का ढेर, मेंड़ या सिंचाई की नाली न हो। इसके लिये खेत में 6 या 7 जगहों से चिन्हित करके 6 इंच के आकार का गढ्ढा खोदते है फिर चारों किनारों से 2 इंच की मोटी परत उसी गड्ढे में गिरा देते हैं। अब हाथ से सम्पूर्ण मिट्टी एक बर्तन में रखते है। इसी तरह 7 जगहों से मिट्टी लेकर फर्श पर रखते हैं। धन का निशान बनाकर कोई दो भाग रख लेते हैं। शेष भाग हटा देते हैं। यह क्रिया तब तक करते हैं जब तक कि मिट्टी 500 ग्राम न रह जाये। अब इस मिट्टी को साफ कपड़े की थैली में रखकर उसमें एक पर्ची डालते है। जिस पर कृषक का नाम, खेत का खसरा नम्बर एवं पिछली बोई गई फसल, आगे बोई जाने वाली फसल का नाम, ग्राम, विकास खण्ड, जनपद, आदि अंकित कर मृदा परीक्षण प्रयोगशाला तक पहुँचाते है।

ग्राम तरीपाठकपुर ब्लाक चौबेपुर, कानपुर नगर में मृदा नमूना लेने की विधि बताते डॉ. खलील खान

मृदा नमूना एकत्रित करते समय सावधानियाँ

- निचली या खाद के ढेर या उर्वरक दी गई जगहों पर, वृक्षों तथा मकानों के निकटवर्ती स्थलों से मृदा का नमूना एकत्रित नहीं करना चाहिए।
- नमूना एकत्रित करने के लिए साफ कपड़े की थैली का प्रयोग करना चाहिए।

मृदा परीक्षण के बिना उर्वरकों का प्रयोग करना, ठीक उसी प्रकार है जैसे डाक्टर की सलाह के बिना दवा का प्रयोग

करना। उदाहरण के तौर पर यदि नत्रजन की कमी है, तो फॉस्फोरस तथा पोटाश का प्रयोग लाभदायक नहीं रहेगा।

मृदा परीक्षण प्रयोगशाला द्वारा दिये गये मृदा स्वास्थ्य कार्ड पर अंकित सूचनायें आपको आपके खेत की मिट्टी की वैज्ञानिक जांच के साथ बोये जाने वाली फसल हेतु विभिन्न पोषक तत्वों की संतुलित मात्राओं की संस्तुति देती है। इससे आपको कम लागत पर अधिक उपज प्राप्त होती है। साथ ही साथ मृदा स्वास्थ्य भी कायम रहता है। मिट्टी का स्वास्थ्य कायम रखने के लिए किसान भाईयों को निम्न सलाह दी जाती है।

ग्राम तरीपाठकपुर ब्लाक चौबेपुर, कानपुर नगर में मृदा नमूना लेने की विधि बताते डॉ. खलील खान

- फसल अवशेष को जलायें नहीं बल्कि ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करके खेत में सड़ा-गला दें।
- हरी खाद, गोबर की खाद, नाडेप कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग अपने खेतों में करें।
- जैव उर्वरक जैसे राइजोबियम कल्चर, फॉस्फेटिक, नील हरित शैवाल, अजोला, पी.एस.बी. आदि का प्रयोग करें।
- कीटनाशकों/कवकनाशी/खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग सीमित करें।
- रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें।

  मृदा पी.एच. सामान्य रखने हेतु मृदा परीक्षण के आधार पर जिप्सम का भी प्रयोग करें।

पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं निदान

नाइट्रोजन की कमी के लक्षण

- पौधों की पत्तियों का रंग पीला व हरा हो जाता है।
- पौधों की वृद्धि ठीक प्रकार से नहीं हो पाती है इसलिए पैदावार कम होती है।
- दाने वाली फसलों में सबसे पहले पौधों की निचली पत्तियाँ सूखना प्रारम्भ कर देती हैं और धीरे-धीरे ऊपर की पत्तियाँ भी सूख जाती है।
- गेहूँ तथा अन्य फसलें जिनमें कल्ले निकलते हैं नत्रजन की कमी से कल्ले कम बनते हैं।
- फलों वाले पेड़ों में अधिकतम फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं और साथ ही साथ फलों का आकार भी छोटा होता है।
- पत्तियों का रंग सफेद हो जाता है और कभी कभी पौधों की पत्तियाँ जल भी जाती है।
- हरी पत्तियों के बीच-बीच में सफेद धब्बे (क्लोरोसिस) भी पड़ जाते है।
- पीला सा हरा रंग सुस्पष्ट और धीमी वृद्धि पत्तियों का सूखना, झुलसना जो कि पौधों की तली से प्रारम्भ होता है और ऊपर की ओर बढ़ता है। मक्का अनाज और घासों जैसे पौधों में झुलसन तली की पत्तियों के अग्र भाग से प्रारम्भ होती है और केन्द्र के नीचे की ओर या मध्य सिरे के साथ-साथ चलती है।

सुधार

- खाद एवं नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का उचित मात्रा में प्रयोग करें।
- जल निकास एवं लीचिंग को सुधार करें।
- फलीदार फसलों को खेतों में उगायें।
- मृदा में वायु संचार का सुधार करें।
- खेतों में हरी खाद का प्रयोग करें।
- नीली हरी एल्गी खेतों में उगाये।

नाइट्रोजन की अधिकता से हानियाँ

आवश्यकता से अधिक नाइट्रोजन भी फसलों के लिए हानिकारक होती है। इसलिए खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान दिया जाये कि फसल को आवश्यकता से अधिक मात्रा में नाइट्रोजन न दी जाये। अधिक मात्रा में नाइट्रोजन देने से निम्न हानिकारक प्रभाव होते हैं।

- पौधों के तने कमजोर हो जाते है, जिससे थोड़ी सी हवा चलने पर फसल गिर जाती है।
- कोमल पौधों पर कीड़े मकोड़े का आक्रमण अधिक होता है।
- फसल देर से पक कर तैयार होती है।
- भूसे के अनुपात में दाना घट जाता है। गेहूँ इसका ज्वलन्त उदाहरण है।
- सब्जियों और फसलों में रखने के गुण कम हो जाते हैं। जिससे इन्हें अधिक समय तक नहीं रख सकते।
- गन्ने की फसल में अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग करने से चीनी की मात्रा कम हो जाती है।
- आलू तथा अन्य फसलों में अधिक मात्रा में नाइट्रोजन के कारण पत्तियों की वृद्धि अधिक होती है, जिससे उत्पादन कम होता है।
- पौधों की दीवारे मुलायम तथा पतली होने के कारण गर्मी तथा कोहरे से बहुत हानि होती है।

फॉस्फोरस की कमी के लक्षण

- फॉस्फोरस की कमी से पौधों का रंग प्रायः गहरा हरा हो जाता है तथा उनकी निचली पत्तियाँ पीली होकर सूख जाती है।
- पौधों की बढ़वार रूक जाती है और पत्तियाँ छोटी रह जाती है।
- मूत्र तंत्रों का विकास तथा फलों का उत्पादन कम हो जाता है और पौधे मुड़े हुए छोटे रह जाते हैं।

  मक्का में पत्तियों का रंग बैगनी, हरा हो जाता है फसल देर से पकती है और भुट्टे भली प्रकार से नहीं बन पाते हैं।
- गन्ने की पत्तियाँ सकरी और नीली हरी हो जाती है।
- कपास के पौधों का रंग गहरा हरा हो जाता है और शाँखाये तथा पत्तियाँ छोटी हो जाती है तथा उनकी बौड़ियाँ देर से पकती हैं।
- दलहनी पौधों में गहरा रंग होने के अलावा पत्तियाँ ऊपर की ओर मुड़ जाती है। पत्तियाँ बहुत छोटी और पतली रहती है।
- जड़ की ग्रन्थियों का आकार एवं संख्या कम हो जाती है।
- आलू की फसल में पत्तियाँ सामने की तरफ मुड़ जाती है और पत्तियों के किनारे झुलस जाते हैं।
- नीबू वर्गीय पौधों की बढ़वार रूक जाती है। सबसे पहले उनकी पुरानी पत्तियों का रंग फीका हो जाता है। ऐसी पत्तियों पर निक्रोसिस रोग के चकत्ते पड़ जाते है।
- पौधों की पत्तियाँ, तना तथा शाखायें नीले रंग की हो जाती है। वृद्धि धीमी होती है तथा परिपक्वता देर से होती है और अनाज, फल तथा बीज की कम पैदावार होती है।

सुधार

- खाद एवं फॉस्फोरस युक्त उर्वकों का उचित मात्रा में प्रयोग करें।
- अम्लीय मृदाओं का पी.एच. अधिक करके या नियन्त्रण करके इसे सुधारा जा सकता है।
- उचित जल निकास करके इसे सुधारा जा सकता है।

पोटैशियम की कमी के लक्षण

- पोटैशियम की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पौधों की पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इन पत्तियों के किनारे झुलसे भी दिखाई देते हैं।
- अनाजों की फसलों में इसकी कमी से तने पतले हो जाते है तथा अधिक कमी से पत्तियाँ झुलस जाती है।
- टिलर पर बालियाँ नहीं आती है तथा दानों का विकास नहीं हो पाता।
- कपास में पीली सफेद कुरूचुर्ण रोग हो जाता है जिससे रेशे की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती है।
- दलहनी फसलों में इसकी कमी का पहला लक्षण पत्तियों के किनारो पर चकत्तों के रूप में दिखाई

देता है। बाद में यह जगह जल्दी ही सूख जाती है। पौधो की वृद्धि नहीं होती है तथा बौने रह जाते हैं।

- तम्बाकू के पौधों की पत्तियों की नसो के बीच में उनके सिरो पर या किनारों पर छोटे-छोटे धब्बे पड़ जाते है। पत्तियों का रूप खराब हो जाता है और जलने की क्षमता भी कम हो जाती है।
- नीबू वर्गीय पौधों में फल आने के समय पत्तियाँ बहुत ज्यादा झड़ती हैं। कोपले और नई पत्तियाँ पकने और कड़ी होने से पहले ही झड़ जाती है।
- निचली पत्तियों पर छोटे-छोटे घाव होते है या वे किनारों तथा सिरों पर जली सी होती है या कटे-फटे किनारों को छोड़ते हुए मृत होकर गिर जाती है। घासों और अनाजों में झुलसन पत्तियों के अग्र भाग से प्रारम्भ होती है और मध्य सिरे को छोड़ते हुए अक्सर किनारे से नीचे की ओर बढ़ती है।

सुधार

पोटेशियम की कमी मृदा में खाद एवं पोटाशधारी उर्वरकों के प्रयोग से तथा लीचिंग को नियन्त्रित करके दूर की जा सकती है।

कैल्सियम की कमी के लक्षण

- अन्तस्थ कलिका में नई पत्तियाँ हुक दार शक्ल की हो जाती है या देखने में सुकड़ी हुई लगती है।
- नई पत्तियों के किनारों और अग्र भागों पर मृत धब्बे हो जाते है।
- जड़ो का मृत हो जाना सभी लक्षणों से पहले होता है।
- जड़े छोटे एवं बहुत शाखाओं वाली होती है।
- पत्तियों के किनारो के साथ-साथ हल्की हरी पट्टी दिखाई देती है।
- आलू के पौधे झाड़ी की तरह हो जाते है।
- नींबू वर्गीय पौधों की पत्तियों का हरा रंग उनके किनारों की ओर से फीका पड़ना आरम्भ होता है और बढ़ते-बढ़ते नसो के बीच की जगह तक पहुँच जाता है।

सुधार

- मृदा सुधारकों जैसे जिप्सम चूना का प्रयोग करें।
- सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करें।
- उर्वरकों जैसे सुपर फॉस्फेट, कैल्सियम अमोनियम, नाइट्रेट आदि का प्रयोग करें।

मैग्नीशियम की कमी के लक्षण

- सिराओं के बीच हरे रंग की सामान्य धारी होती है, जो कि निचली पत्तियों से प्रारम्भ होती है और बाद में मृत हो जाती है।
- पत्तियों की सिराये हरी बनी रहती हैं।
- हरी सिराओं के बीच में कपास की पत्तियाँ अक्सर लाल नीली रंग में बदल जाती है।
- सिराओं के बीच में मृत क्षेत्र बहुत ही शीघ्रता से विकसित हो जाते है।
- आलू की पत्तियाँ खस्ता और जल्दी टूटने वाली हो जाती हैं।
- नींबू वर्गीय पौधों में पत्तियों पर अनियमित आकार के पीले धब्बे हो जाते हैं, ये पीली पत्तियाँ बाद में गिर जाती है।

सुधार

मृदा में मैग्नीशियम की कमी को दूर करने के लिए प्रायः मृदा सुधारकों जैसे डोलोमाइट पोटैशियम मैग्नीशियम सल्फेट और मैग्नीसाइट आदि का प्रयोग करना चाहिए।

सल्फर की कमी के लक्षण

- पत्तियाँ हल्की हरी होती हैं और समीप की सिराओं के बीच के भागों से सिराये हल्की होती है, पत्तियों में कुछ मृत धब्बे पाये जाते है। पुरानी पत्तियों को कुछ या बिल्कुल नहीं सूखना आदि।
- फलों के पकने से पहले टूटना या हल्का हरा रहना।
- बहुत से पौधों में सल्फर की कमी के लक्षण लगभग उसी प्रकार होते है, जैसे कि नाइट्रोजन की कमी के लक्षण होते हैं। जिसकी वजह से कभी-कभी संशय होने से गलत अर्थ निकल जाता है, क्योंकि दोनों दशाओं में पत्तियाँ लगभग समान

रूप से पीली या हरितमाहीन होती है। अन्तर यह है कि गंधक की कमी होने पर पौधो की ऊपरी पत्तियाँ पहले पीली पड़ती है, जबकि नाइट्रोजन की कमी होने से पौधे की निचली पत्तियाँ पहले पीली पड़ती है। जब दोनों की कमी होती है, तब पौधों की ऊपरी और निचली दोनों पत्तियाँ पीली पड़ जाती है।

सुधार

सल्फर उर्वरकों जैसे अमोनियम सल्फेट, जिप्सम, सुपर फॉस्फेट आदि के प्रयोग से सल्फर की कमी दूर की जा सकती है।

आवश्यक संस्तुतियाँ

- अम्लीय मिट्टी में यूरिया का प्रयोग न करें। सम्भव हो सके तो कैल्सियम, अमोनियम नाइट्रेट उर्वरक का प्रयोग करें क्योंकि अमोनियम नाइट्रेट उर्वरक में नाइट्रोजन के साथ-साथ कैल्सियम व मैग्नीशियम भी होता है, जिससे अम्लीय मृदा में इसका प्रयोग अधिक लाभदायक होता है।
- सिंचित दशा में फसलों के लिए नाइट्रोजन की कुल अनुमोदित मात्रा 2/3 भाग व फॉस्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय प्रयोग करें। शेष नाइट्रोजन की मात्रा को दो भागों में बाँटकर पहली सिंचाई के बाद तथा दूसरे फल आने के पूर्व करें।
- खड़ी फसल में नत्रजन प्रयोग करते समय खेत में उचित नमी होनी चाहिए। उर्वरक का प्रयोग खेत में समान रूप से करें।
- फॉस्फोरस व पोटाश की खादों को पूर्ण में बीज से 5 सेमी. गहराई पर अवस्थापन करें।
- नत्रजन व पोटाश उर्वरकों को कभी भी बीज के साथ मिलाकर नहीं बोना चाहिए, नही तो बीज अकुंरण पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।
- असंचित क्षेत्रों में पोटाश के समुचित प्रयोग से फसलों जलाभाव अथवा सूखे को सहन करने की क्षमता को बढ़ा देता है।
- अधिक अम्लीय मिट्टी में चूने व जिप्सम का प्रयोग करें।
- तिलहनी फसलों में सल्फर 20 से 50 किलोग्राम प्रति हे. की दर से प्रयोग करें।
- सड़ी गोबर की खाद व अन्य फसल अवशेष मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए उपयोगी है। अतः इनका प्रयोग करे, इससे मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है।
- फसलोत्पादन में रासायनिक उर्वरकों के साथ-साथ जैव उर्वरकों का प्रयोग करके लागत कम की जा सकती है। तथा रासायनिक उर्वरकों द्वारा होने वाले खतरों को कम किया जा सकता है।

सावधानियाँ

पाला, सूखा, झुलसा पौधों के कीड़े मकौड़े और रोगों के आक्रमण, जलाक्रांति, मृदा की क्षारियता, रासायनों की फुहारों से क्षति या अत्यधिक खनिज पोषकों के विषैले प्रभावों के कारण अल्पता के लक्षण जटिल हो सकते हैं। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि पौषक तत्वों की अल्पता के लक्षणों के कुशल प्रयोग के साथ-साथ निदान के अन्य विधियों जैसे पौधे व मृदा परीक्षण सही उर्वरक निर्धारण प्रक्रिया के लिए अच्छा कदम सिद्ध हो सकता है।

निष्कर्ष

मृदा की जाँच एक रासाययनिक प्रक्रिया है जिससे मिट्टी में उपस्थित पौधों के पोषक तत्वों का निर्धारण व प्रबन्धन किया जाता है। मृदा जाँच से फसल बोने से पूर्व ही पोषक तत्वों की आवश्यक मात्रा ज्ञात की जाती है। जिससे आवश्यक उर्वरकों की पूर्ति फसल की आवश्यकता के अनुसार की जा सके, जिससे कृषक सही मात्रा में फसल के अनुसार पोषक तत्व डालें। मृदा की आवश्यकता के अनुसार सही प्रकार से उर्वरकों का प्रयोग हो। मृदा के रासायनिक विश्लेषण से मिट्टी की उपयुक्तता के आधार पर फसल की अधिक पैदावार के लिए बिल्कुल सही अनुमान लगाया जा सकता है।

❖❖

बंजर भूमि में जल प्रबंधन के साथ बागवानी

महेन्द्र जड़िया[1*], बलवीर सिंह[2] एवं प्रमोद कुमार वर्मा[3]

[1]एल.एन.सी.टी. विश्वविद्यालय, भोपाल

[2 & 3]रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन

पत्राचारकर्ता : mahendrajadia89@gmail.com

परिचय

बंजर भूमि को विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों जैसे- क्षारीय, खारी, रेह, सेह व शेरा आदि से जाना जाता है। भारत जैसे देश में लगभग 72 लाख हेक्टेयर क्षेत्र इससे सर्वाधिक प्रभावित है, जिसमें मध्यप्रदेश का 12 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल प्रभावित है, जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश लवण युक्त ऊसर भूमि विशेष रूप से प्रभावित है। आंकड़ों के अनुमान से पता चलता है कि भारतवर्ष में 20 हजार हेक्टेयर भूमि प्रतिवर्ष ऊसर भूमि का रूप ले रही है।

किसान फलोत्पादन करके आर्थिक लाभ के साथ भूमि का समुचित उपयोग कर पाते हैं। विभिन्न तरह के शोध परिणामों से सिद्ध हुआ है कि फलों के उत्पादन के लिए कई तरह भूमिया उपयुक्त होती है। लेकिन फलों का उत्पादन इस बात पर निर्भर करती है कि पौधों को कितनी नमी की आवश्यकता है और कितनी नमी उपलब्ध हो रही है।

आर्द्रता वातावरण का एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसमें फलों की गुणवत्तापूर्ण खेती सफलता पूर्वक निर्धारित की जा सके। जल के द्वारा सभी तरह के घुलनशील तत्व पौधों की दशा अनुसार हो तथा बंजर भूमि में, मैग्नीशियम, कैल्शियम एवं सोडियम के घुलनशील नमक, फॉस्फेट तथा क्लोराइड के रूप में उपस्थित होते है।

ऊसर जमीन में जीवाश्म की कमी होने के कारण, उसमें पानी धारण करने की क्षमता अच्छी नहीं होती है, जिसके कारण पानी का वाष्पीकरण तेजी से होता है, परिणामस्वरूप भूमि में नमक (लवण) के ऊपर इकट्ठा होने की संभावना बनी रहती है। ऐसी स्थिति में विभिन्न फसलों के लिये उपयुक्त जल प्रबंधन आवश्यक है। आर्द्रता पौधे की बढ़त में सहायक होती है तथा लवण को पौधों की जड़ो से दूर रखती है साथ ही साथ जड़ों और भूमि की पारगम्यता को बढ़ाती है। पौधों को जल की आवश्यकता जलवायु, मिट्टी, सिंचाई के विभिन्न तरीको तथा पौधों की किस्म आदि पर निर्भर करती है, जिसके कारण पौधों में बदलाव होता रहता हैं।

सिंचाई प्रबंध बागवानी फसलों का अध्ययन करने से पता चलता है कि जल प्रबंधन भी आजकल बहुत कम हुआ है। इसकी उपलब्धता से ज्ञात होता है कि बागवानी फसलों में कितने दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए। जिसे पूर्ण रुप से वैज्ञानिक स्तर पर सही नहीं कहा जा सकता है,क्योंकि सिंचाई की दशा पौंधो की प्रजाति, भूमि का ढाल, मिट्टी की दशा तथा जलवायु क्षेत्र पर निर्भर करती है कुछ मुख्य फसलों का जल प्रबंध निम्न प्रकार हैं :

सिंचाई प्रबंध एंव अन्तराल प्रबंध

उघानिकी फसलों का अध्ययन करने से पता चलता है कि सिंचाई पर बहुत कम काम हुआ है। इससे यह ज्ञात होता कि उद्यानिकी फसलों में कितने दिनों के बाद सिंचाई करनी है। जिसे वैज्ञानिक स्तर पर पूर्ण और सही नहीं कहा जा सकता क्योंकि पौंधो की प्रजाति, जमीन का ढाल, सिंचाई की दशा तथा उस जगह की जलवायु का अध्ययन करते हुये सिंचाई प्रबंध करना चाहिए।

कुछ विशेष फसलों का जल प्रबंधन तकनीकें निम्न प्रकार है-

(क) अमरूद : अमरूद में रोपण के तुरंत पश्चात् सिंचाई करना आवश्यक है, जिसमें शुरु के दिनों में 8-10 सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। फलन वाले वृक्षों को सिंचाई देने से पुष्पन अच्छा होता है तथा अप्रैल से जून तक 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए।

(ख) आँवला : आँवले के पौंधो की अच्छी बढ़वार के 10 से 15 दिन के लिए ठण्ड के मौसम में और गर्मियों के मौसम में 7-10 दिन के अन्तराल में सिंचाई करना चाहिये। यदि बंजर एवं बेकार तरह की भूमि हो, तो ड्रिप विधि द्वारा सिंचाई करना चाहिए तथा अन्य शोध परिणामों में पाया गया है कि यदि पौंधो में 60 प्रतिशत क्षेत्रफल को सिंचित किया

जाए, तो इसमें नमी उपयोग क्षमता सर्वाधिक होगी।

(ग) बेर : बेर शुष्क क्षेत्रों की फसल है, जिसमें बहुत कम सिंचाई की आवश्यकता होती है। बेर को बिना सिंचाई के भी उगाया जा सकता है लेकिन अच्छी उपज के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है, जिसमें यदि ड्रिप विधि के द्वारा जल प्रबंध करते है, तो अच्छी फसल तथा फलों की गुणवत्ता में सर्वाधिक वृद्धि पायी गयी है। फलों के विकास के लिए नवम्बर- मार्च में सिंचाई करना लाभप्रद होता है।

(घ) नींबू वर्गीय फल : नींबू वर्गीय फलों में स्वस्थ जड़ों तथा पौंधो की अच्छी बढ़त हो इसके लिए साल भर उचित सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। पौधे में ठीक तरह निरन्तर विकास जैसे फूल आना, फल लगने तक पानी की बराबर आवश्यकता पड़ती है। इस समय हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए तथा ग्रीष्म ऋतु में 6- 7 दिन के अंतराल पर तथा सर्दियों के दिनों में 1 माह के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए।

(ङ) आम : आम शीतोषण जलवायु का फल है, जिसमें छोटे पौधों को बरसात में पानी की कम आवश्यकता होती है परन्तु सर्दियों और गर्मियो में 3-4 दिन के अन्दर तथा सर्दियो में 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। आम फसल में ड्रिप विधि से सिंचाई करना लाभदायक होता है, जिससे जल की बचत के साथ- साथ उचित सिंचाई प्रबंधन सुनिश्चित होता है तथा गुणवत्तापूर्ण फल प्राप्त होते है।

(च) पपीता : इनके पौधों की जड़ जमीन में ज्यादा गहरायी पर नहीं जाती है, जिसके कारण इसमें हल्की तथा

जल्दी-जल्दी सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। पपीते की खेती अधिक नमी वाले क्षेत्रों में नहीं की जा सकती। इसमें सर्दियों में 10-12 दिन तथा गर्मियों में 6-8 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। इसमें सिंचाई की बेसिन पद्धति काफी सन्तोषजनक सिद्ध हुई है। ड्रिप सिंचाई पद्धति अपनाने से पानी की बचत होती है और पैदावार बढ़ती है।

निष्कर्ष

बंजर भूमि का हमारे देश में लगभग 72 लाख हेक्टेयर क्षेत्र है। जिसमें हम कृषि के साथ उद्यानिकी फसलों को विशेष रूप से फल वाली फसलों को उगा कर इस प्रकार की भूमियों को उपयोगी बनाया जा सकता है। बंजर भूमियों के सुधार के साथ जल प्रबंधन करते हुये भूमि की उर्वरकता बनाये रखने के लिए निरंतर इस प्रकार के प्रयास करते रहना होगा।

❖❖

फलोद्यान में अन्तवर्तीय फसल प्रणाली अधिकतम आय का साधन

नकुल राव रंगारे[1]*, अनय रावत[2] एवं एन. आर. रंगारे[3]

[1]राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रबन्ध संस्थान, हैदराबाद

[2]जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

[3]इंदिरागांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर

पत्राचारकर्ता : nrrangare@gmail.com

परिचय

फल उद्यानिकी भारत वर्ष में प्राचीन काल से की जाती रही है किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भूमि की घटती जोत के कारण किसान फल उद्यानिकी प्रति रूझान नहीं दिखाते हैं। दूसरा प्रमुख कारण यह है कि फल उद्यान से आय लगाने के तुरंत बाद नहीं होती है। अतः किसान अपनी आजीविका के लिये खाद्यान्न फसलों को प्राथमिकता देते है। भारत में जनसंख्या अधिक होने के कारण फल एवं सब्जियों की उपलब्धता प्रति व्यक्ति न्यूनतम आवश्यकता से कम है। यद्यपि विश्व दृष्टिकोण में भारत फल उत्पादन में प्रथम और सब्जी उत्पादन में द्वितीय स्थान पर है। सीमित जोतो के कारण हमारे देश का किसान उद्यानिकी फसलो पर कम ध्यान देता है। नवीन अनुसंधान कार्यो के आधार पर अब किसान फल-वृक्षों को उगाने के साथ-साथ अन्तवर्तीय फसल ले सकते हैं, जिससे फल बागों में बीच की खाली भूमि का सुदपयोग हो सकता है और किसान अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं, जिससे प्रारंभिक खर्चे का काफी भाग किसानों को वापस मिल जाता है। अन्तवर्तीय फसलों के रूप में दलहनी एवं कम समय में तैयार होने वाली फसले लाभप्रद सिद्ध हुई है। साथ ही साथ अन्तवर्तीय फसलों से भूमि क्षरण भी कम होता है। दलहनी फसलों से भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है, जिससे फलवृक्षों की वृद्धि एवं विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

फसल का चुनाव

अन्तवर्तीय फसलों के चुनाव हेतु भूमि फसल जलवायु और बाग की आयु, जैसे कारकों को ध्यान में रखा जाता है। फलबाग में वृक्षों की आयु एवं उनके फैलाव के आधार पर भी अन्तवर्तीय फसल का निर्धारण किया जाता है। पुराने बागों में छाया में अच्छा उत्पादन देने वाली फसलें हल्दी, अदरक, अनन्नास आदि फसलें उगायी जा सकती है। नये बागों में सब्जियों के अतिरिक्त दलहन एवं तिलहन की फसलें अच्छी उपज के साथ ली जा सकती है। अन्तवर्तीय फसल ऐसी नही होनी चाहिए कि वह फल के पौधों को पूर्णतया ढक लें। फसलों एवं सब्जियों के अतिरिक्त आय के बागों में फलदार पौधे पपीता, अनार, अनन्नास, फालसा, आड़ू, अमरूद आदि भी लगायें जाते हैं। फसलों के चुनाव में निम्न बातें ध्यान में रखना चाहिए :

- नये फल वृक्षो को पूर्णतः ढकने वाली फसलें जैसे ज्वार, बाजरा, गन्ना, मक्का इत्यादि न उगायें, इनसे उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- भिन्न जल आवश्यकता वाली अन्तः फसल, नहीं लेना चाहिए, जैसे कि धान में अधिक पानी की आवश्यकता होती है। उसके उपरान्त अधिकतम पानी से आम, नींबू, लीची आदि की जड़ो पर बीमारी (गलन) लगती है।
- किसी भी अन्तवर्तीय फसल को पेड़ के नीचे उसके फैलाव तक नहीं उगाना चाहिए, बल्कि पेड़ के नीचे उसके फैलाव तक थाला बनाकर उतना स्थान छोड़ देना चाहिए।
- फल वृक्षों के लिए सिंचाई तथा खाद उनकी आवश्यकतानुसार, वैज्ञानिकों द्वारा सिफारिश मात्रा को पूरी-पूरी समयानुसार देना चाहिए। इसके अतिरिक्त फसल की सिंचाई के साथ पौधें की सिंचाई भी पूरी हो जाये, यह ध्यान रखा जाना चाहिए।
- अन्तवर्तीय फसलों की आवश्यकता उनके ही हिसाब से पूरी करना चाहिए।
- अन्तवर्तीय फसल के लिए दलहनी फसलों जैसे फ्रेंचबीन, लोबिया, मूँग, उड़द, अरहर, मटर आदि को प्राथमिकता देना चाहिए।

अतः फसलों की खेती पर अधिक अनुसंधान कार्य नहीं हुआ है, फिर भी अलग-अलग अनुसंधान केन्द्रो पर वैज्ञानिको द्वारा शोध कार्य प्रगति पर है।

अतः सामान्यतः कृषक आम के वृक्षों के बीच अन्तवर्तीय फसल उगाते हैं, जिनमें अधिकतर ऐसी होती है, जो फल वृक्षों के विकास पर विपरीत प्रभाव डालती है, जैसे गन्ना, मक्का, धान एवं ज्वार आदि। तीन वर्षो से इस विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय कृषि परियोजना के तहत 'फल वृक्षों पर आधारित फसल पद्धति का मानकीकरण' विषय पर शोधकार्य किया जा रहा है। यहाँ पर फल वृक्षों के रूप में आम (नये एवं पुराने वृक्ष), अमरूद, आँवला, कटहल और अनार लगायें गये है। 6 साल पुराने आम आधारित फसलोत्पादन पद्धति में अन्तः फसल के रूप में धान, मक्का, उड़द, लोबिया और अरहर लिये गये, जबकि रबी फसल के रूप में चना, गेहूँ, मटर और अरहर ली गयी। आम तथा सभी फसलों में खाद एवं उर्वरक की मात्रा फसल की सिफारिस के अनुसार दी गयी। कुल आमदानी सबसे ज्यादा उड़द एवं गेहूँ फसल पद्धति (रू. 36,600/ हे.) से प्राप्त हुई। जबकि सबसे ज्यादा मुनाफा बरबटी, गेहूँ फसल पद्धति से प्राप्त हुआ (रू. 10,596 हे.) इन फसलों के उत्पादन पर आम के वृक्षों की छाया का आंशिक प्रभाव देखा गया। इन फसलों में से धान और मक्का, आम के वृक्षो के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

नये लगाये गये आम के वृक्षों के एक वर्ष पुराने बगीचे में खरीफ में उड़द, अरहर, भिण्डी, बरबटी तथा रबी में अरहर, मटर, टमाटर और मिर्च ली गई। भिण्डी-मटर फसल पद्धति से रू. 44,875 प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ, जो कि एकल फसल पद्धति से प्राप्त आमदानी के बराबर है। एक प्रयोग में उड़द-टमाटर फसल पद्धति भी काफी लाभदायक सिद्ध हुई है।

अमरूद

नये (एक वर्ष के) एवं पुराने (चार वर्ष के) बगीचे में विभिन्न प्रकार के अन्तः फसल लिये गये। खरीफ फसल में उड़द और अरहर तथा रबी फसल में मटर, चना, फ्रेंचबीन्स और मसूर लिये गये। उड़द-मसूर फसल पद्धति से रू. 6,492 प्रति हेक्टेयर का शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ। मटर और फ्रेंचबीन्स से भी भरपूर लाभ प्राप्त हुआ है। इन फसलों से अमरूद में वृद्धि और विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। मृदा परीक्षण के नतीजो से पता चला कि दलहनी फसलें लेने से मृदा में पोषक तत्वों की वृद्धि होती है, जो कि फल वृक्षों के लिए भी लाभदायक है। अतः दलहनी फसलें अन्तवर्तीय फसल के लिए सर्वथा उपयुक्त है। चार वर्ष पुराने अमरूद में रामतिल की फसल पैदावार की गई जिससे रामतिल की अकेले फसल के बराबर उपज 4.5 क्विंटल प्राप्त हुई। इनके अतिरिक्त गर्मी में कद्दू, लौकी, खरबूज, तरबूज और ककड़ी भी आसानी से उगाई जा सकती है।

विभिन्न फल बागानों में अन्तः फसल हेतु समयावधि

फल वृक्ष	पौधे से पौधे की दूरी (मीटर)	रिक्त स्थान खत्म होने की समयावधि	अन्तः फसल लेने की अवधि (वर्ष)
आम	10 × 10	07	05
लीची	10 × 10	10	07
कटहल	10 × 10	10	07
नींबू प्रजाति	6 × 6	05	04
अमरूद	6 × 6	05	03
बेर	6 × 6	04	02
अनार	5 × 5	05	05
पपीता	2 × 2	09 माह	05 माह

नीबू

इन फलों की खेती अक्सर व्यवसायिक स्तर पर होती है। इनको 6.6 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है तथा शुरू के 4-5 वर्ष तक इनमें अन्तः फसल की जा सकती है। चूँकि ये फल रोग, कीटो तथा पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा नहीं करती है। अतः इन्हें उगाना चाहिए।

राष्ट्रीय कृषि तकनीकि परियोजना के द्वारा चलाये जा रहे शोध में लौकी, भिण्डी, सूरजमुखी तथा रामतिल सफलतापूर्वक उगाये गये और अच्छी पैदावार ली गयी, जिससे 3-4 वर्ष के नींबू के पौधे पर भी कोई बुरा असर नहीं पड़ा।

पपीता

पपीता एक वर्षीय फल है। अतः फल केवल शुरू के मौसम के लिये ही ली जा सकती है। छः माह के पहले जब पौधे का विकास (ऊँचाई) ज्यादा नहीं होती है। ऐसी स्थिति में कोई भी फसल सफलतापूर्वक ली जा सकती है। इसलिये कम

समय (4-5 महीने) में उत्पादन देने वाली सब्जियों (टमाटर, बैंगन, मिर्च, प्याज, गोभी, लौकी इत्यादि) की खेती करना ही उपयुक्त है।

यहाँ पर हुये शोध में बैंगन, लौकी और मिर्च की खेती सफलतापूर्वक की गयी, जिससे क्रमशः 130 क्विंटल, 140 क्विंटल और 50 क्विंटल (हरी मिर्च) उपज प्रति हेक्टेयर प्राप्त की गयी और इस तरह पपीते की भरपूर पैदावार के साथ-साथ इन फसलों से अतिरिक्त आय भी प्राप्त हुयी।

निष्कर्ष

शोध द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि जब तक फल वृक्ष फल देना शुरू न करें तब तक अन्तवर्तीय फसलों से अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। ऐसे कृषक जिनके पास कम भूमि है। वे भी फलबाग लगाकर बीज की जमीन में खेती कर सकते है। फल वृक्षों के ज्यादा फैलाव के समय जबकि छाया ज्यादा रहती है। इस दौरान उपरोक्त बताये हुये वृक्षो को लगाया जायें और फल प्राप्त करने के साथ-साथ अतिरिक्त आय भी प्राप्त की जा सकती है। आवश्यकता यह है कि अन्तः फसलों के उत्पादन के सिद्धांतो को ध्यान में रखकर खेती की जाये, जिससे फल वृक्षों से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके।

❖❖

जैविक खाद बनाने की वैज्ञानिक विधि

अलीमुल इस्लाम[1]*, एवं नौशाद आलम[2]

[1]कृषि प्रसार विभाग शुआट्स, प्रयागराज

[2]कृषि प्रसार, कृषि विज्ञान केन्द्र थरियांव, फतेहपुर

पत्राचारकर्ता : alikhan9695@gmail.com

परिचय

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए सबसे पहले क्यूबा में प्रयोग किया गया। वर्मीकम्पोस्ट में कचरे को खाद में परिवर्तित करने हेतु केचुओं को नियन्त्रित वातावरण में पाला जाता है। अभी पिछले कुछ दशकों में भारतवर्ष की तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति करने के लिए यूरिया, डी.ए.पी., पोटाश इत्यादि रासायनिक खादों का अंधाधुंध प्रयोग हुआ है। इससे गोबर खाद, कम्पोस्ट व हरी खाद के प्रयोग में बड़ी भारी कमी हुयी है। रासायनिक खादों को आवश्यकता से अधिक एवं असंतुलित प्रयोग से जहाँ मृदा की उर्वरा शक्ति में गिरावट आ रही है। वहीं पर्यावरण पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। भारत सरकार एवं कृषि वैज्ञानिकों द्वारा इस भयावह स्थिति से बचने के लिए आजकल जैविक कृषि पर जोर दिया जा रहा है। कार्बनिक खादों के उपयोग को बढ़ावा देने की आवश्यता है। कार्बनिक खादो जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, एवं हरी खाद इत्यादि से किसान भाई अच्छी प्रकार से परिचित हैं। वैज्ञानिक द्वारा घरेलू कूड़े करकट व अन्य वनस्पतियों को केचुओं की मदद से कम समय में गला-सड़ा कर अच्छी कम्पोस्ट खाद तैयार करने की विधि विकसित की है। इस विधि से तैयार कम्पोस्ट खाद को वर्मी कम्पोस्ट कहते हैं। वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए सतही केचुएं, जो मिट्टी (10 प्रतिशत) कम व कार्बनिक पदार्थ (90 प्रतिशत) अधिक मात्रा में खाते हैं, प्रयोग में लाये जाते हैं। इसकी एक महत्वपूर्ण प्रजाति का नाम आइसीनिया फेटिडा है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए 60 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ (फसल अवशेष, पेड़ों के पत्ते, घरेलू कूड़ा-करकट, खरपतवार व अन्य वानस्पतिक कचरा), 30 प्रतिशत गोबर, 10 प्रतिशत खेत की मिट्टी व केचुओं की आवश्यकता होती है। वर्मीकम्पोस्ट में नमी बरकरार रखने के लिए पानी की आवश्यकता होती है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि

वर्मीकम्पोस्ट को मेंड़ बनाकर या गड्ढे में बनाया जा सकता है। मेड़ बनाकर वर्मीकम्पोस्ट तैयार करने की विधि अच्छी पायी गई है, क्योंकि इसमें हवा का संचार अच्छा होता है, जिससे केंचुओं की काम करने की क्षमता बढ़ जाती है तथा खाद जल्दी तैयार हो जाती है। अधिक गर्मी व सर्दी जैसी विपरीत स्थितियों में वर्मीकम्पोस्ट को गड्ढो में तैयार किया जा सकता है। मेड़ या गड्ढों की चौड़ाई 10 सेमी. ऊँचाई 60 सेमी. व लम्बाई आवश्कतानुसार रखी जाती है। कम्पोस्ट बनाने के लिए विभिन्न सामग्री को लगाने के लिए सबसे नीचे 12-15 सेमी. फसल और गोबर की मोटी परतें लगायें। तीसरी परत के रूप में 30-40 सेमी. फसल अवशेष या कूड़ा करकट की परतें बिछायें। इसके ऊपर 3-4 सेमी. खेत की उपजाऊ मिट्टी की सतह लगायें। सबसे ऊपर 5-6 सेमी. गोबर की परत लगाकर केंचुए छोड़ दें। 400-500 केंचुए प्रति घनमीटर या 150-200 केंचुए प्रति क्विटंल सामग्री की दर से जरूरत पड़ती है। केंचुए डालने के पश्चात मेंड़ को पुरानी जूट की बोरी से ढक दें, ताकि केचुओं को धूप से बचाया जा सके। केचुओं को अच्छी कार्य क्षमता बनाये रखने के लिए सामग्री में उचित नमी की मात्रा रखनी चाहिए तथा आवश्यकतानुसार पानी लगाते रहना चाहिए। वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए 28 से 34 डिग्री सेन्टीग्रेड तापक्रम उपयुक्त पाया जाता है। सर्दियों में उचित तापमान बनायें रखने के लिए 8 से 10 दिन में एक बार ताजे गोबर की 2-3 से.मी. मोटी परत सामग्री के ऊपर डालनी चाहिए। गर्मियों के महीनों में तापमान कम करने के लिए कम्पोस्ट बनाने वाले जगह के चारों तरफ ढैंचा या सनई की 2-3 फुट चौड़ी पट्टी लगाना लाभप्रद पाया गया है।

वर्मीकम्पोस्ट में पोषक तत्वों की मात्रा

वर्मीकम्पोस्ट में पोषक तत्वों की मात्रा उसमें प्रयोग होने वाली सामग्री पर निर्भर करती है। उसमें नाइट्रोजन 1-2.25 प्रतिशत, फॉस्फोरस 1-1.5 प्रतिशत, पोटाश 2-3 प्रतिशत

होती है। उसके साथ-साथ अन्य आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व भी पौधों में उपलब्ध होते हैं।

- वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग से मृदा में जैविक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है तथा भूमि की पानी सोखने व रासायनिक खादों की कार्य क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है।
- वर्मीकम्पोस्ट भूमि में सूक्ष्म जीवाणुओं को सक्रीय करता है तथा पोषक तत्वों को संतुलित मात्रा में पौधों की उपलब्ध करवाता है।
- वर्गीकम्पोस्ट से भूमि में वायु संचार अच्छा रहता है और जड़ों का विकास भी अच्छा होता है।
- इसके उपयोग से फलों, सब्जियों एवं खाद्यान्नों के स्वाद आकार, रंग व पैदावार में वृद्धि होती है।
- वर्मीकम्पोस्ट उपयोग से रासायनिक उर्वरको व अन्य कृषि रसायनों के प्रयोग में कमी की जा सकती है।
- इसके उपयोग से फल, सब्जियों व अनाज की गुणवत्ता में सुधार होता है तथा उत्पादों का मूल्य भी अच्छा मिलता है।
- ग्रामीण व शहर के कूडे -करकट, फार्म अवशेष एवं पशुशाला के कूड़े करकट का सदुपयोग करके वातावरण की समस्या भी हल होगी।

वर्मीकम्पोस्ट की मात्रा

फलदार वृक्ष- ऐसे वृक्षो में 5 कि.ग्रा. वर्गीकम्पोस्ट प्रति पेड़ की दर से मिट्टी में मिलाये तथा उतनी ही मात्रा में गोबर रखें ताकि खेत में विद्यमान केंचुए इसे खाकर जैविक खाद के रूप में बदल कर फसल को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध करवा सके।

सब्जी वाली फसलें- सब्जियों में वर्गीकम्पोस्ट की मात्रा 3 टन प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें तथा खेत में वर्मीकम्पोस्ट के साथ गोबर एवं वानस्पतिक अवशेषों को हर फसल में डालकर उचित नमी बनाये रखें।

वर्मीकम्पोस्ट तैयार करने में आवश्यक सावधानियाँ

- बेड पर ताजा गोबर केवल सर्दियों में प्रयोग करें अन्यथा 20- 25 दिन पुराना गोबर ही प्रयोग में लायें।
- बेड में उपयुक्त नमी, तापमान व हवा का संचार बनाये रखें।
- वर्मीकम्पोस्ट छाया में बनायें एवं रखें।
- वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए ऐसा जगह चुनें जहाँ पानी इकट्ठा न होता हो।
- केंचुओं को मेंढ़क, साँप, छिपकली इत्यादि शत्रुओं से बचाये।

वर्मीकल्चर तकनीक को अपना कर कृषि अवशेषों, घरेलू कूड़े कचरे व अन्य वानस्पतिक कचरे का सद्पयोग करें तथा फसलों, फलों व सब्जियों की गुणवत्ता व उत्पादकता में बढ़ोत्तरी पाये।

निष्कर्ष

प्राचीन काल से ही वर्मीकंपोस्ट का उपयोग होता चला आ रहा है और केंचुआ किसान का मित्र रहा है। खेत में उपलब्ध सड़े गले कार्बनिक पदार्थों को खा कर अच्छी गुणवत्ता की खाद तैयार करते है। वर्मी कंपोस्ट को मेढ़ बनाकर या गड्ढे में बनाया जा सकता है। मेढ़ बनाकर वर्मी कंपोस्ट तैयार करने की विधि अच्छी पाई गई है। वर्मी कंपोस्ट में पोषक तत्वों की मात्रा उसमें प्रयोग होने वाली सामग्री पर निर्भर करती है। आज से 25-30 वर्ष पूर्व हमारी भूमियों में केंचुआ काफी संख्या में पाए जाते थे। किंतु आज बागों और तालाबों में ही केंचुआ रह गया है कि चूँकि दिन प्रतिदिन इनकी घटती जा रही संख्या के कारण ही भूमि की उर्वरता में कमी आती जा रही है। शायद यही कारण है कि जैवकीय खादों में पुनः केंचुआ खाद आ रहा है और सरकार भी जैविक खेतों को बढ़ावा दे रही है।

❖❖

धान की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग एवं नियंत्रण

एन. आर. रंगारे[1]* एवं अनय रावत[2]

[1]राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रबन्ध संस्थान, हैदराबाद

[2]जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : nrrangare@gmail.com

परिचय

धान की खेती पूरे विश्व में बड़े पैमाने पर की जाती है और यह पूरे विश्व में पैदा होने वाली प्रमुख फसलों में से एक है। खाद्य के रूप में अगर बात करें, तो यह सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि अधिकांश देशों में मुख्य खाद्य है। ऐसा माना जाता है दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों भारत, म्यांमार और थाइलैण्ड में सबसे पहले धान की खेती शुरू हुई थी। चीन चावल का सर्वाधिक उत्पादन करता है और उत्पादन की दृष्टि से यह प्रथम स्थान रखता है। भारत विश्व का द्वितीय उत्पादक देश है।धान की खेती करने वाले किसानों को सबसे ज्यादा समस्या इसमें लगने वाले कीटों तथा रोगों की वजह से आती है।

दरअसल धान की फसल पर विभिन्न तरह के कीटों व रोगों का प्रकोप रहता है जो धान की अधिक उत्पादन में बाधा डालते हैं जिससे धान की खेती करने वाले किसानों को आर्थिक रूप से बेहद नुकसान उठाना पड़ता है। यदि धान की फसल में लगने वाले रोगों का सही प्रबन्धन किया जाय तो इसकी अधिक पैदावार की जा सकती है। धान की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग निम्नलिखित है।

झोंका रोग (Blast)

इस रोग का प्रकोप सामान्यतः सीधी बुवाई वाले धान में अधिक देखा जाता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण जैसे-पौधों की पत्तियों, तनों, गांठों, पेनिकल व बालियों पर दिखाई देते है।

लक्षण

- इस रोग में पत्तियों पर आँख की आकृति जैसे धब्बे दिखाई देते हैं, जो बीच में सलेटी राख के रंग के तथा किनारों पर गहरे भूरे रंग के होते हैं।
- तने की गांठो तथा पेनिफल का भाग आंशिक अथवा पूर्णतः काला पड़ जाता है तथा तना सिकुड़ कर गिर जाता है।
- इस रोग का प्रकोप जुलाई से सितम्बर माह में अधिक देखा जाता है।

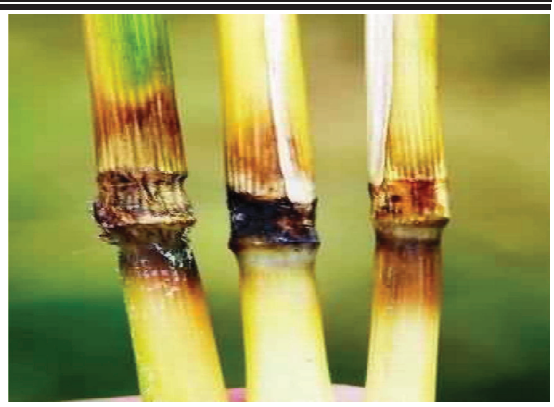

रोग नियंत्रण

- इस रोग के नियंत्रण के लिए बीज को ट्राईसाइक्लेजोल की 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज दर से उपचारित कर के लगायें।
- 0.1% (1 ग्राम/लीटर) कार्बेन्डाजिम का छिड़काव पुष्पन की अवस्था में करें।
- रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का उपयोग करें, जैसे वी.एल. धान 206 , मझरा - 7, वी.एल.धान - 61 इत्यादि।
- इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर बाली निकलने के दौरान आवश्यकतानुसार 10-12 दिन के अन्तराल पर कार्बेन्डाजिम 50% घुलनशील धूल की 15-20 ग्राम मात्रा को 15 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें।

भूरी चित्ती रोग (Brown Spot)

लक्षण

- इस रोग में पत्तियों पर भूरे रंग के छोटे छोटे धब्बे दिखाई देते हैं, अत्यधिक संक्रमण की अवस्था में आपस में मिलकर पत्तियों को सुखा देते हैं और बालियाँ पूर्ण रूप से बाहर नहीं निकल पाती है।
- यह रोग कम उर्वरता वाले क्षेत्रों में अधिक होता है।

रोग नियंत्रण

- नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटास उर्वरकों का प्रयोग संतुलित मात्रा में ही करें।
- कार्बोक्सिन (37.5 %) + थीरम (37. 5%) दवा का 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज दर से उपचारित कर बुवाई करें।
- रोग लक्षण दिखाई देने मैंकोजेब का 0.3 % (3 ग्राम/ ली.) पानी में घोलकर छिड़काव करें।

पर्णच्छद अंगमारी शीथ ब्लाइट रोग (Sheeth Blight)

लक्षण

- इस रोग में पौधो में पानी के सतह से ठीक ऊपर पौधो के आवरण पर अण्डाकार जैसा उजला धब्बा दिखायी देता है।
- इसमें पर्णच्छद पर पत्ती की सतह के ऊपर 2-3 से.मी. लम्बे हरे-भूरे या पुआल के रंग के रोगी स्थल बन जाते हैं।

रोग नियंत्रण

- फसल कटने के बाद अवशेषों को जला दें।
- खेतों में जल निकासी की व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए तथा हमेंशा जल भराव नहीं होना चाहिए।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर प्रोपेकोनाजोल 1 मि.ली. /ली. पानी में घोलकर 10 - 15 दिन के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करें।

तना छेदक एवं गुलाबी तना बेधक

- इस कीट की सूड़ी अवस्था आक्रमक तथा क्षतिकारी होती है।

लक्षण

- इसमें सूड़ियाँ मध्य कलिकाओं की पत्तियों को छेदकर अन्दर घुस जाती है तथा अन्दर ही अन्दर तने को खाती हुई गाँठ तक चली जाती है।
- अगर इस कीट का प्रकोप पौधे की बढ़वार अवस्था में अधिक होता है, तो पौधों में बालियाँ नहीं निकलती है।
- यदि बाली अवस्था में प्रकोप हो तो बालियाँ सूखकर सफेद पड़ जाती है तथा दाने नहीं बनते हैं।
- इस कीट का प्रकोप पर्वतीय छेत्रों में सीधी बुवाई किये हुये धान में अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है।

रोग नियंत्रण

- फसल की कटाई जमीन की सतह से करें तथा अवशेष ठूठों को एकत्रित कर के जला दें।
- जिंक सल्फेट + बुझा हुआ चूना (100 ग्राम + 50 ग्राम) को 15 - 20 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- यदि बुझा हुआ चूना ना हो तो 2% यूरिया के घोल का उपयोग कर सकते हैं।

- रोपाई करते समय पौधो के उपरी भाग को थोड़ा सा काटकर हटा दें जिससे इसमें उपस्थित तना छेदक के अंडे नष्ट हो सकें।
- फेरोमोन ट्रेप का प्रयोग 500 वर्ग मी. क्षेत्रफल में एक ट्रेप की दर से प्रयोग करें।
- 15 - 20 दिन के अंतराल पर ट्रेप के लेयर को बदलते रहना चाहिए।
- 2 एम.एल. क्लोरोपायरीफोस प्रति लीटर पानी की दर से उपयोग करें या फटेरा 4 किलो ग्राम प्रति एकड़ का भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

ब्राउन प्लांट हॉपर (BPH)

ब्राउन प्लांटहॉपर (BPH) तराई में चावल का एक कीट है। यह एक छोटा भूरा कीट है, जो मुख्य रूप से जल स्तर से ऊपर चावल के पौधों के आधार पर पाया जाता है। वयस्क और युवा अवस्था में यह पौधे का रस पत्ती के आवरण से चूसते हैं, जिससे निचली और फिर ऊपरी पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं। जिसे 'हॉपर बर्न' से प्रभावित कहा जाता है। जब इसका हमला गंभीर होता है, तो यह पूरी फसल की हानि का कारण बन सकता है।

प्रबंध

जैविक विधि द्वारा रोग नियंत्रण

- ईटीएलः शिकारी मकड़ी की अनुपस्थिति में 1 हॉपर/टिलर और 1 पहाड़ी पर मकड़ी मौजूद होने पर 2 हॉपर/टिलर।
- नाइट्रोजन के अत्यधिक प्रयोग से बचें।
- रुक-रुक कर जल निकासी द्वारा सिंचाई को नियंत्रित करें।
- रात में लाइट ट्रैप लगाये या दिन में पीले पैन ट्रैप लगाये।
- कीटनाशकों के उपयोग से पहले पानी को निकाल दें और स्प्रे को पौधों के आधार की ओर निर्देशित करें।

रासायनिक विधि द्वारा रोग नियंत्रण

- नीम का तेल 3% 15 लीटर/हेक्टेयर लगाये।
- फॉसलोन 35 ईसी 1500 मिली/हेक्टेयर
- कार्बेरिल 10 डी 25 किग्रा हेक्टेयर
- क्लोरपाइरीफॉस 20 ईसी 1250 मिली/हेक्टेयर
- बुप्रोफेज़िन 25% एससी 800 मिली/हेक्टेयर
- कार्बोसल्फान 25 ईसी 800-1000 मिला/हेक्टेयर
- डाइक्लोरवोस 76% एससी 470 मिली/हेक्टेयर

निष्कर्ष

दरअसल धान की फसल पर बहुत तरह के कीटों व रोगों का प्रकोप रहता है, जो धान के अधिक उत्पादन में बाधा डालते हैं, जिससे धान की खेती करने वाले किसानों को आर्थिक रूप से बेहद नुकसान उठाना पड़ता है। अतः धान की पुसल में कीटों और रोगों का पूर्व में ही सही प्रबंधन किया जाए तो इसकी अधिक पैदावार ली जा सकती है। साथ ही उचित देखभाल कर अच्छी गुणवत्ता के बीज का चयन किया जाना चाहिये।

❖❖

लीची का विपणनः परिदृश्य एवं सुधार जरूरते

विशाल नाथ[1]* एवं स्वनिल पाण्डेय[2]

[1]विशेष कार्य अधिकारी भाकृअनुप संस्थान झारखण्ड, गौरियाकर्मा, हजारीबाग

[2]फल विज्ञान पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय फल अनुसंधान केन्द्र सह कृषि महाविद्यालय, बल्लेबिवार, सूखरी, शहीद भगत सिंह नगर, पंजाब

पत्राचारकर्ता : Vishalnath966@gmail.com

परिचय

वर्तमान समय (2019-20) में पूरे देश में लगभग 1 लाख हेक्टयर में लीची की बागवानी हो रही है, जिससे लगभग 7.5 लाख टन फल पैदा होता है। वर्ष 1950 में जब हम 11000 हेक्टयर क्षेत्रफल से 45000 टन लीची पैदा करते थे, तब शायद किसी ने इसके बाजार और विपणन की परिकल्पना नहीं की होगी। उस समय जो भी उत्पाद अपने उपयोग से बचता था वह आस-पास के बाजारों में आसानी से बिक जाता था और उस पर कोई विशेष ध्यान भी नहीं दिया जाता था। वास्तव में उस समय इस प्रकार के फल एवं सब्जियों का व्यापार एक वर्ग विशेष तक सीमित होता था और समाज के बहुत सारे वर्ग और समुदाय इसे अपनी इज्जत और मान मर्यादा का स्तर भी मानते थे। आज जब हम 7.5 लाख टन लीची उत्पादित कर रहे हैं, तब इसके विपणन और उससे जुड़ी हुई आधारभूत संरचनाओं की अत्यधिक जरूरत महसूस की जाने लगी है।

लीची के उत्पादन में बिहार एक अग्रणी राज्य है, जहाँ देश के कुल उत्पादन का लगभग 40-45 प्रतिशत फल पैदा हो रहा है। बिहार में लीची उत्पादन पारम्परिक तरीके से किया जाता रहा है और पिछले लगभग 10 वर्षों से क्षेत्रफल विस्तार की दर लगभग स्थिर है और यही कारण है कि अन्य राज्य जो उत्तरोत्तर गति से लीची की बागवानी बढ़ा रहे हैं, बिहार के लिए खतरा बनते जा रहे हैं। चूँकि नये बागीचे आधुनिक विधि और वैज्ञानिकता के आधार पर स्थापित हो रहे हैं और उनमें वैज्ञानिक अनुशंसा के अनुरूप कृषि कार्य भी हो रहे हैं। अतः उनकी उत्पादकता और गुणवत्ता दोनों बेहतर हो रही है। शायद यही कारण है कि पंजाब में लीची की उत्पादकता 15 टन के आस-पास रहती रही है, जो बिहार के तुलना में लगभग दो गुना है। बिहार के अधिकतर बाग बूढ़े हो चले हैं और जो किसान अनुसंधान अनुशंसा के अनुरूप प्रबन्ध कर रहे हैं। उनकी उत्पादकता भी 12-13 टन प्रति हेक्टर तक की हो रही

है परन्तु ऐसे बागवानों की संख्या गिनती की है। विगत 10 वर्षों में, बेहतर कल के लिए बिहार से जो पलायन अन्य राज्यों या शहरों को हुआ है, उससे भी लीची की बागवानी और विपणन प्रभावित हुआ है। बहुत सारे ऐसे लीची बाग आपको मिल जायेंगे, जो प्रबन्धकों या हिस्सेदारों द्वारा संचालित हो रहे हैं और वे प्रबंधक ससमय पारदर्शी निर्णय लेने में सक्षम नहीं हो पाते हैं, जिससे बाग प्रबन्ध और विपणन प्रभावित होता है, क्योंकि इसे बागीचों से अच्छी गुणवत्ता के फल नहीं मिल पाते हैं।

विगत में बिहार से लीची का जो भी व्यापार होता रहा है, मुजफ्फरपुर उसका केंद्र बिंदु था, क्योंकि उत्तर बिहार में मुजफ्फरपुर एक स्थापित व्यवसायिक केंद्र रहा है और सड़क तथा रेल मार्ग से देश के विभिन्न हिस्सों से जुड़ा रहा है। अगर हम लीची के क्षेत्र फैलाव और उत्पादकता के दृष्टिकोण से देखते हैं, तो मुजफ्फरपुर और आस पास के समस्तीपुर, वैशाली, पूर्वी चम्पारण एवं सीतामढ़ी जिले या यूँ कहें कि सम्पूर्ण तिरहुत प्रमण्डल लीची के लिए बेहतर मिट्टी एवं जलवायु मुहैया कराता है। गण्डक तथा अन्य नदियों द्वारा लायी हुई जलोढ़ मृदा तथा नदियों के निरंतर वाही होने के कारण गर्मियों के दिनों में (जब लीची के फल विकसित एवं परिपक्व होते हैं) जलवायु की आर्द्रता इस क्षेत्र को लीची के खेती और

गुणवत्ता के लिए बेहतर बनाती है। हालाकि, यह बात और है कि विश्व के प्रमुख लीची उत्पादक स्थान इससे भिन्न हैं और वहाँ पर लीची की गुणवत्ता (खुशबू को छोड़कर) बेहतर भी हैं, परन्तु बिहार का यह भूखण्ड क्षेत्र लीची उत्पादन का एक स्थापित क्षेत्र बन चुका है।

शायद यही कारण था कि सन् 2001 में मुजफ्फरपुर में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र की स्थापना की थी। केंद्र ने लीची के अनेक किस्मों, उत्पादन तकनीकों, पौध सुरक्षा उपायों तथा फलों के भण्डारण एवं उत्पाद विविधीकरण की अनेक तकनीकों का विकास किया है परन्तु फलों का विपणन किसान और व्यापारी के मध्य प्रत्यक्ष या परोक्ष सौदेबाजी के कारण कृषि अनुसंधान के दायरे से परे हो जाता है। अतः इसकी स्थिति अत्यन्त सोचनीय एवं दयनीय बनी हुई है। लीची के विपणन की मुख्य रूप से तीन-चार विधियाँ प्रचलित हैं, जिनसे कभी किसान तो कभी व्यापारी संतुष्ट नहीं हो पाते। एक पारदर्शी सौदेबाजी और दोनों पक्षों के ईमानदारी के अभाव में दोनों पक्ष कभी न कभी और किसी न किसी रूप में प्रभावित होता है। जिस वर्ष क्रेता पक्ष फायदे में होता है, वह दूसरे पक्ष यानि विक्रेता किसान को भागीदार नहीं बनाता और जिस वर्ष क्रेता पक्ष (व्यापारी) कम फायदा या नुकसान में होता है, तो वह किसान को पूरा पैसा नहीं देता। अतः इस प्रकार लीची उत्पादक किसान एक स्थापित बाजार व्यवस्था न होने के कारण समस्या ग्रस्त रहता है और शायद इसी कारण से दिन-प्रतिदिन उसकी लीची से अभिरूचि कम होती जाती है।

लीची विपणन जो तीनों विधियाँ प्रचलित हैं, उनके भी अपने गुण एवं दोष हैं और वे कोई स्थाई समाधान देने में असमर्थ हैं।

(क) किसान -व्यापारी विधि : यह विधि वैसे तो सीधी और आसान है परन्तु व्यापारियों के पास किसानों से और किसानों के पास से संपर्क स्थापित करने और सौदा तय करने के पास कोई सामान्य प्लेटफार्म न होने के कारण बहुत ही कम लोग इस विधि से जुड़ पाते हैं।

(ख) किसान-छोटा व्यापारी -बड़ा व्यापारी: बिहार के ज्यादातर लीची उत्पादक किसान इस पद्धति के मकड़जाल में फँसे रहते हैं। चूँकि बड़ा व्यापारी कुछ छोटे व्यापारियों (बिचौलियों), जिन्हें सम्मानपूर्वक द्वितीय अंशदार (Secondary Stake holder) भी कह सकते हैं, के सम्पर्क में रहता है और यह छोटा व्यापारी किसानों के संपर्क में होता है। अतः सौदा दो स्तरों पर होता है। अब यदि बीच की कड़ी (छोटा व्यापारी या बिचौलिया) ईमानदार और पारदर्शी है, जिसकी संभावना बहुत कम होती है, तो सौदा ठीक होता है और तीनों पक्ष संतुष्ट रहते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यापारी सहभागिता में व्यवसाय करता है, तो दोनों को जोखिम और लाभ का अंशदार पड़ता है और ऐसी दोनों दशा में अक्सर साझेदारी टूट जाती है या कोई दूसरा रूप ले लेती है, जो अत्यन्त घातक हो जाता है। इस पद्धति का सबसे सशक्त पहलू है कि किसान को बिना किसी जोखिम के फसल का मूल्य मिलने की संभावना होती है। अतः अधिकतर लोग इसका अनुसरण करते हैं परन्तु जो लोग जोखिम उठाने की क्षमता और बाजार पर थोड़ा पकड़ रखते हैं, वे इससे अलग तीसरे पद्धति को अपनाते हैं।

पक्ष	एक वर्ष	दो वर्ष	तीन वर्ष
किसान	• बाग का प्रबंध • मंजर और फल सुरक्षा • उत्पाद संग्रहण केंद्र • बिजली, पानी की व्यवस्था	• उत्पाद संग्रहण स्थल का रख रखाव • बिजली, पानी एवं अन्य आवश्यक प्रबंध	स्थाई सुविधा का रख रखाव एवं व्यापारी से मधुर संबंधन
व्यापारी	• बाग का सही दाम • फलों की सुरक्षा (सौदा तय होने के बाद) के पास • तोड़ाई एवं श्रेणी करण • पैकिंग एवं परिवहन • बिक्री तथा अन्य जोखिम	• बाग प्रबंध • फसल सुरक्षा • फल का सारा प्रबंध एवं बिक्री • फसल का मूल्य किसान को देना	• किसान को सही मूल्य देना • फसल एवं पौधे का पूरा प्रबंध • व्यापार के लिए उचित व्यवस्था • बेहतर तालमेल एवं आधुनिक ज्ञान द्वारा गुणवत्ता सुधार

(ग) किसान द्वारा सीधे व्यापार : यह पद्धति भी कुछ ही गिने-चुने लीची उत्पादकों द्वारा अपनाई जा रही है या तो किसान बहुत छोटा हो, जो स्वयं अपना उत्पाद स्थानीय बाजार में बेचे या बड़ा किसान हो, जिसके पास अपना आधारभूत विपणन ढाँचा हो और बाजार की समझ और सम्पर्क हो। इस पद्धति में जोखिम तो है परन्तु मुनाफा भी है। अतः सक्षम किसान इस दिशा में आगे बढ़ें, तो शायद परिदृश्य कुछ और हो सकता है।

अब हम सबसे ज्यादा प्रचलित विधि (किसान-छोटा व्यापारी-बड़ा व्यापारी) की विस्तार से चर्चा करेंगे और शायद यही से हमें कोई नया रास्ता दिखेगा, जो लीची के विपणन को नई दिशा दे सकता है। आधुनिक परिवेश में इस विषय पर अनेक सुझाव भी आ सकते हैं। लीची उत्पादक यदि अपना बागीचा किसी छोटे व्यापारी को देता है, तो दोनों पक्ष (किसान और छोटा व्यापारी) की कुछ शर्तें हो सकती हैं।

किसान बगीचे को एक वर्ष, दो वर्ष या तीन वर्ष के लिए बिक्री कर सकता है। यदि सौदा सामान्य दशा में दोनों की आपसी सहमति से किसी लिखित दस्तावेज द्वारा निर्णायक होता है, तो यह व्यवस्था अच्छी चल सकती है। निम्नलिखित सारणी से एक वर्ष के लिए बिक्री, दो वर्ष और तीन वर्ष के लिए बिक्री हेतु दोनों पक्ष क्या कर सकते हैं, का विवरण देने का प्रयास किया जाता है।

इस पद्धति में सारा दारोमदार किसान और छोटे व्यापारी पर होता है। किसान जहाँ अपने बागीचे को व्यापारी को बेचता है। वहीं छोटा व्यापारी बाग प्रबंध से लेकर फल सुरक्षा एवं आगे के बड़े व्यापारियों से संपर्क द्वारा फल उनके गन्तव्य स्थान या मण्डी तक भेजने का प्रबंध रखता है। यदि व्यापारी स्थापित, पंजीकृत, पारदर्शी, एवं साधन सम्पन्न होता है, तो उसे न तो किसान से कोई परेशानी होती है और न ही बड़े-बड़े व्यापारियों से। अतः स्थानीय स्तर पर लीची का विपणन करने वाले व्यापारियों का पंजीकरण होना अति आवश्यक होता है, जो लीची के विपणन का एक मजबूत स्तम्भ होगा। वर्तमान समय में यह व्यवस्था नहीं है, जिसके फलस्वरूप कोई भी व्यक्ति या नौजवान इसमें कूद पड़ता है और साख या पारदर्शिता की कमी के कारण कोई उत्तरदायित्व लेने में अक्षम होता है तथा पूरा व्यवसाय चौपट हो जाता है। अन्ततः किसान को पूरा पैसा नहीं मिलता है और अविश्वास की स्थिति पैदा हो जाती है।

इस दिशा में आजकल बहुत तकनीकी सम्पन्न उद्यमी प्रयास कर रहे हैं। उनके पास ज्ञान भी है तथा आधारभूत संरचना (शीतवाहन, पैकहाउस) सहित बाजार भी परन्तु उनके पास लीची के बाग नहीं है। अतः वे फल लगने से ही सक्रिय होते हैं और चूँकि लीची की परिपक्वता अवधि बहुत कम होती है वे कोई ठोस कदम उठाने में असमर्थ दिखते हैं तथा उस समय जो भी लोग उनके सम्पर्क में आते हैं उन्हीं पर विश्वास करके व्यापार करते हैं, जो शायद एक दूरगामी और स्थाई समाधान देने में असफल रहता है। एक उदाहरण के माध्यम से मैं 2020 की स्थिति आपके सामने रखता हूँ।

कोविड-19 के कारण जहाँ एक तरफ किसान इस आशंका में थे कि शायद उनका उत्पाद खरीदने के लिए कोई व्यापारी नहीं आयेगा, वहीं दूसरी तरफ जो विगत वर्षों से व्यापार में सलग्न लोग (व्यापारी) यह सोचते थे कि पता नहीं फसल कैसी हो अथवा यदि फसल ठीक भी हुई, तो किसान हमें छोड़कर कहाँ जा सकता है। यह परिस्थिति दुर्भाग्यपूर्ण ही नहीं अपितु लीची के लिए घातक भी थी। इस पर जब प्रशासन और शोध संस्थान के सम्मिलित प्रयास से फसल की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में सफलता मिली तो व्यापारी किसानों से फसल खरीदने को तैयार हुए परन्तु बाजार अनिश्चितता की बात कह कर ढीले प्रयास किये। लीची उत्पाद संघ एवं अन्य संस्थागत प्रयासों से एक निजी कम्पनी जब अपने टीम एवं संसाधन से लीची फलों को बंगलौर भेजने के लिए तैयार हुई, तब उसे अच्छे फल मिलने में बड़ी मशक्कत करनी पड़ी और अंत में मात्र 3-4 ट्रिप ही बंगलौर तक भेजा जा सका और जो गया भी वह पूर्ण क्षमता में नहीं जा सका, क्योंकि उस कम्पनी का ना तो कोई पूर्व में सम्पर्क था और न ही कोई उत्तरदायित्व। अतः यदि पहले से संपर्क और आपसी बातचीत से सहमति होती तो शायद और अधिक व्यापार या निर्यात हो सकता था। दूसरी बात जो प्रक्रिया (ग्रेडिंग/पैकिंग आदि) कम्पनी बंगलौर के अपने पैक हाउस गोदाम (वातानुकूलित) प्रसंस्करण में करके 500 ग्राम या 1 किग्रा. की पैकेट बनाकर माल स्थानीय एवं बड़े बाजारों में भेज रही थी, वह यदि स्थानीय स्तर पर पैक हाऊस बना कर किया जाता तो शायद कम परिश्रम से हो सकता था और यहाँ के युवाओं को रोजगार भी मिलता है।

इस पूरे प्रकरण एवं घटनाक्रम से जो बातें उभरकर सामने आती है। उन्हें सूचीबद्ध करके उस पर सभी भागीदारों को ईमानदारी पूर्वक पूर्ण मनोयोग से काम करने की जरूरत होगी, तभी लीची के विपणन और उसके उत्पादन से जुड़े किसानों का भला हो सकता है। कुछ बिंदु अंकित किये गये हैं।

- बाग का बेहतर प्रबंध और उसमें समय-समय पर वैज्ञानिकों

के सुझावों और अपने अनुभवों के समावेश द्वारा बेहतर उत्पादन और गुणवत्ता के लिए प्रयास।

- किसानों का डाटा बेस तैयार करना तथा उत्पादन क्षमता का सटीक आंकलन।
- कृषि उपादान विक्रेताओं का सूचीकरण तथा लीची उत्पादन में प्रयोग होने वाले पदार्थों की ससमय उपलब्धता तथा गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण।
- लीची व्यवसाय से जुड़े छोटे व्यापारियों, कमीशन एजेन्टों अथवा द्वितीय हितधारकों की सूची तैयार करना और उनके व्यापार का पंजीकरण।
- परिवहन के साधन उपलब्ध कराने वालों, डिब्बा या कार्टून सप्लाई करने वालों का पंजीकरण।
- पैक हाउस इकाई की स्थापना तथा मानक के अनुरूप सुविधाओं का विकास।
- प्रसंस्करण इकाईयों की स्थापना तथा पंजीकरण।
- लीची उत्पादक किसान संस्थानों (F.P.O.) का गठन एवं आधारभूत सुविधाओं की स्थापना।
- सरकार के स्तर पर किसानों, व्यापारियों तथा अन्य भागीदारों को फसल बीमा या जोखिम सुरक्षा प्रदान करने की रणनीति बनाई जाय।
- लीची का ब्राण्ड स्थापित करने के लिए निवेशकों को बढ़ावा दिया जाय तथा निवेशकों के हितों की सुरक्षा के लिए यथोचित उपाय किये जाय।

निष्कर्ष

मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि लीची की खेती जो अभी तक शौकिया तौर पर की जाती थी। उसे व्यवसायिक रूप देने का समय आ गया है। जब लीची को वास्तविक रूप से जीविका के साधन के रूप में देखा जायेगा और उसमें संलग्न जमीन के वास्तविक मूल्य के अनुसार उत्पादन और उत्पादकता की सोच विकसित की जायेगी, तब स्वतः ही मूल्य, व्यापार, विपणन, आधारभूत सुविधा का विकास हो सकेगा और नीतिगत फैसले भी किसानों के हित में होने लगेंगे। अनेक फल फसलों के उदाहरण हमारे सामने हैं, उनसे सीख लेकर हमें लीची की बेहतर विपणन के दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है।

❖❖

पोषक तत्वों से भरपूर अलसी अतिगुणकारी

मयंक मेंहरा[1]*, आशीष कुमार त्रिपाठी[2] एवं सुखलाल वास्केल[3]

[1, 2&3]कृषि विज्ञान केन्द्र, सागर-2, बिजौरा (देवरी), जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : mmayankvkao@gmail.com

परिचय

अलसी को हम फ्लैक्स सीड्स (flax seeds) भी कहते हैं। अलसी एक ऐसा खाद्य पदार्थ है, जिसका सेवन जिस रुप में किया जाए, फायदेमंद ही होता है। अलसी के बीज और पाउडर में कई ऐसे औषधीय गुण मौजूद होते हैं, जो कई बीमारियों से शरीर को निजात दिलाते हैं। इसके अलावा अलसी का पौधा कई जड़ी-बूटी बनाने में काम आता है। अलसी में कई ऐसे पोषक तत्व होते हैं, जो मानव शरीर के लिए स्वास्थ्यवर्धक हैं। अलसी ओमेंगा-3 फैटी एसिड, विटामिन बी 1, प्रोटीन, फाइबर, मैग्नीशियम, मैंगनीज, फॉसफोरस, सेलेनियम एवं आयरन इत्यादि का एक बढ़िया स्त्रोत है। भरपूर मात्रा में ओमेंगा-3 फैटी एसिड मौजूद होने से अलसी हमारे शरीर के इम्यून सिस्टम को मजबूत करता है और हमारे शरीर को कई बीमारियों से बचाता है। अलसी में मौजूद फायदेमंद गुणों के लिए इसे सालों से एक औषधि के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। अलसी कई बीमारियों के इलाज में चमत्कार साबित हुई है। खाली पेट अलसी खाने से पेट साफ होता है और पाचन क्रिया मजबूत होती है।

अलसी के लड्डू बनने की विधि

सामग्री

- आधा किलो अलसी भूनी हुई
- आधा किलो गेहूँ का आटा
- दो कप गुड़ टुकड़ों में
- आधा किलो घी
- 100 ग्राम काजू
- 100 ग्राम बादाम
- 100 ग्राम खाने वाला गोंद
- छोटी इलायची थोड़ी
- सबसे पहले भूनी हुई अलसी को मिक्सी में डालकर अच्छी तरह से पीस लें। इस बात का ध्यान रखे कि इसे आपको दो बार मिक्सी में चलाना पड़ सकता है, क्योंकि यह एक बार में नही पीसती। इसके बाद इसे एक बड़े कटोरे में निकाल कर रख लें। इसके बाद कढ़ाही में थोड़ा घी डालकर आटा को अच्छी तरह से भून लें।
- हल्का भूरा होने के बाद इसे निकाल लें। इसके बाद घी में गोंद, मक्खन, काजू, बादाम, पिस्ता सभी को एक-एक करके भून लें। इसके बाद इन्हे किसी भारी चीज से इन सबको कूट लें। जिससे यह सब दरदरी हो जाए।

- अब एक बड़ी कढ़ाही में पानी और गुड़ डालकर चाशनी बनाये। इसे तब तक पकाते रहे जब तक कि एक तार की चाशनी न बन जाये। एक तार की चाशनी को जानने के लिए थोड़ा सा चम्मच में इस चाशनी को लें। इसके बाद इसे थोड़ा ठंडा कर ले, जिससे कि आपके हाथ न जलें। इसके बाद इसे दो उंगुलियों के बीच लेकर दोनों उंगुलियों को एक-दूसरे से दूर करें।
- जब इसमें एक ही तार बने तो समझ लीजिए कि चाशनी तैयार है। इसके बाद इसमें भूना हुआ आटा, अलसी, सभी मेंवे और गोंद डालकर अच्छी तरह से मिलाये। जिससे कि गुड़ पूरे में अच्छी तरह से मिल जाये।

हाथों में थोड़ा सा पानी डालकर इसको लेकर लड्डू बनाकर एक प्लेट में रख दें। आपके अलसी के लड्डू बनकर तैयार है। इसे आप एक महीने तक रख सकते है। सुबह-सुबह इन्हे खाने से आपको ताजगी के साथ-साथ स्फूर्ति भी आ जाएगी।

अलसी के लड्डू के फायदे

- अलसी का लड्डू आपकी सेहत के लिए काफी फायदेमंद है, क्योंकि अलसी के छोटे-छोटे बीजों में आपकी सेहत के बड़े-बड़े राज छुपे हुए हैं।
- अलसी में मौजूद घुलनशील फाइबर प्राकृतिक रुप से आपके शरीर में कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित कर रक्त के प्रवाह को बेहतर बनाता है, जिससे हार्ट अटैक का खतरा ना के बराबर हो जाता है।
- अलसी आपके शरीर के भीतर मौजूद अतिरिक्त फैट को कम करती है, जिससे शरीर का वजन नियंत्रित होता है।
- अलसी में मौजूद एंटी-ऑक्सीडेंट्स और फाइटोकैमिकल्स बढ़ती उम्र के लक्षणों को कम करते हैं, जिससे चेहरे पर असमय झुर्रियाँ नहीं पड़ती है और त्वचा लंबे समय तक स्वस्थ व जवां नजर आती है।
- अलसी में अल्फा लाइनोइक एसिड पाया जाता है, जो ऑर्थराइटिस, अस्थमा, डायबिटीज और कैंसर से लड़ने में मदद करता है।
- सीमित मात्रा में अलसी का सेवन खून में शुगर के स्तर को नियंत्रित करता है, जिससे शरीर के आंतरिक भाग स्वस्थ रहते हैं और बेहतर तरीके से काम करते है।
- मछली में ओमेंगा-3 भरपूर मात्रा में पाया जाता है लेकिन जो लोग शाकाहारी हैं उनके लिए अलसी ओमेंगा-3 पाने का बेहतर विकल्प है।
- अलसी में मौजूद लाइगन नामक तत्व आंतों में सक्रिय होकर ऐसे तत्व का निर्माण करता है, जो फीमेंल हार्मोन्स के संतुलन को बनाए रखने में मदद करता है।

निष्कर्ष

अगर आप सर्दियों में नियमित रुप से अलसी या फिर अलसी के लड्डू का सेवन करेंगे तो आप खुद को कई बीमारियों से बचाकर रख सकते हैं और अगर आप स्वस्थ रहते हैं। तो इससे आपको डॉक्टर के पास जाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

❖❖

सावधानी पूर्वक करें कीटनाशक दवाओं का प्रयोग

अलीमुल इस्लाम[1]* एवं सूर्य नारायण[2]

[1]कृषि प्रसार विभाग, शुआट्स, प्रयागराज

[2]उद्यान विज्ञान विभाग, कुलभास्कर आश्रम पी जी कॉलेज, प्रयागराज

पत्राचारकर्ता : alikhan9695@gmail.com

परिचय

आधुनिक युग में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए कीटनाशक का प्रयोग अधिक किया जा रहा है। फसल की कम पैदावार के कई कारणों में से खरपतवार एवं कीट की बीमारियाँ प्रमुख हैं। अच्छे फसलोत्पादन हेतु बुवाई से लेकर कटाई तक रसायनों का प्रयोग किया जाता है। बीज बुवाई के पहले बीजोपचार तथा बुवाई के पश्चात् कीट-नियंत्रण एवं समय-समय पर बीमारियों से रक्षा हेतु रासायनिक दवाओं का प्रयोग किया जाता है। कीटनाशकों के प्रयोग करते वक्त अति सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। यदि इन रसायनों का सावधानी पूर्वक प्रयोग नहीं किया गया, तो यह मनुष्यों, पशुओं एवं पक्षियों इत्यादि के लिए हानिकारक हो सकते है।

रसायनों का चयन करते समय सम्बन्धित फसल, फसल पूरी होने की अवधि, फसल की अवस्थाओं एवं फसल पर रसायनों के प्रयोग का सही समय जानना अति आवश्यक है। इसके साथ ही साथ डिब्बों पर अंकित निर्देशो, संकेतों, तिथि की जानकारी के अभाव में एवं गलत प्रयोग से किसान भाईयों को परेशानी का सामना करना पड़ता है।

कीटनाशक, फफूँदीनाशक और खरपतवार नाशक रसायनों के प्रयोग में किसान भाईयों को निम्न सावधानियाँ बरतनी चाहिए। उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

रसायनों की खरीद एवं भण्डारण में सावधानियाँ

रसायन हमेशा अधिकृत विक्रेताओं से ही खरीदना चाहिए एवं खरीदते समय डिब्बे पर लेबिल आई.एस.आई. आदि चिन्हों, रसायनों के प्रयोग की अन्तिम तिथि को भी सावधानीपूर्वक अवश्य ही पढ़ लेना चाहिए तथा उन्हीं रसायनों को खरीदना चाहिए, जो कि भारत सरकार की रजिस्ट्रेशन कमेंटी से पंजीकृत हों या निर्धारित किये गये हों।

दवा को किसी सुरक्षित स्थल पर बच्चे, बूढ़े तथा पशुओं की पहुँच से दूर रखें। दवा की शीशी, पैकेट, डिब्बे को कभी भी फर्श पर न रखें जहाँ ठोकर लगने से गिर सकता है। दवा को हमेशा लेबल लगे डिब्बे में ही रखना चाहिए एवं कभी भी खाने पीने के डिब्बे में न रखे। कीड़े मारने तथा खरपतवार नष्ट करने की दवाओं को एक दूसरे से दूर रखना चाहिए। इनके आस-पास खाने-पीने की चीजें आदि दवा से पर्याप्त दूरी पर रखें। रसायन को कभी भी सूंघने तथा चखने की कोशिश न करें एवं दवा के प्रयोग के बाद पैंकिग को खेतों में गड्ढों में दबा देना चाहिए।

छिड़काव से पूर्व सावधानियाँ

प्रयोग से पहले किसान भाईयों को निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए।

- रसायनों पर लगे लेबल तथा उसके साथ मिलने वाली विवरणिका में दिये गये निर्देशों को अवश्य पढ़ें तथा समझें।
- रसायनों/कीटनाशकों एवं खरपतवार नाशकों की सही मात्रा की गणना अवश्य करें।
- सुरक्षा उपकरणों को चेक करें।
- दवाओं का पैकेट व डिब्बा खोलते समय किसी प्रकार का रिसाव न होने दें।
- सभी रसायनों को खुले तथा हवादार स्थान में गहरे बर्तन में घोल कर मिलाना चाहिए।
- घोल बनाते समय खाने-पीने की वस्तुओं का सेवन न करें। यदि घोल बनाते समय अथवा टैंक भरते समय किसी प्रकार का रिसाव हो तो उसे तुरन्त साफ कर दें।
- एक से अधिक रसायनों को मिलाकर घोल नहीं बनाना चाहिए। हाथों में दस्ताने, चेहरे पर नकाब एवं सिर पर टोपी लगानी चाहिए।

छिड़काव के दौरान सावधानियाँ

फसल में दवा का छिड़काव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

- छिड़काव के समय सुरक्षा वस्त्र व उपकरण अवश्य पहनें।
- हवा के बहाव के दिशा में ही मुँह करके छिड़काव करें तथा आँखों पर चश्मा अवश्य लगायें।
- स्प्रेयर को किसी नोजल अथवा उपकरण में मुँह लगाकर घोल खीचनें का प्रयास न करें।
- उपकरण में किसी भी प्रकार का रिसाव नही होना चाहिए।
- वर्षा के पहले एवं वर्षा के तुरन्त बाद छिड़काव नहीं करना चाहिए।
- सिर्फ उन्हीं जीवनाशक/रसायन का छिड़काव करना चाहिए, जो सिर्फ हानिकारक कीटों/फफूँदों को मारतें हो एवं लाभदायक कीटों या जैविक नियंत्रण कारकों को कोई हानि नहीं पहुँचाते हो।
- दवा का छिड़काव संतुलित मात्रा में ही करना चाहिए।
- छिड़काव तेज धूप एवं तेज हवा में नहीं करना चाहिए। छिड़काव करते समय या तुरन्त बाद पशुओं/मजदूरों को खेत में नहीं जाने देना चाहिए।
- स्प्रयेर को अच्छी तरह से प्रयोग से पहले एवं प्रयोग के बाद धोना चाहिए व नोजल की बराबर सफाई करना चाहिए। खड़ी फसलों में स्प्रेयर गार्ड अवश्य लगाना चाहिए।

छिड़काव के बाद सावधानियाँ

दवा छिड़काव का कार्य समाप्त होने पर जो सावधानियाँ बरतनी चाहिए निम्नलिखित हैं-

- रसायन के खाली डिब्बों को प्रयोग में न लाकर उन्हें जला दें या जमीन में खोदकर गाड़ दें।
- छिड़काव समाप्त होने पर टैंक में बचे हुए घोल को पानी में मिलाकर किसी सुरक्षित स्थान में गड्ढा खोद कर डाल दें एवं गड्ढे को मिट्टी से ढक दें।
- छिड़काव में लाये गये बर्तन का उपयोग घर में न करें।
- उपकरण को ठीक प्रकार से साफ कर दें।
- प्रयोग में उपयोग किये गये वस्त्रों को साबुन से धोकर धूप में सुखाना चाहिए एवं इसके बाद स्नान अवश्य करें।
- उपचारित खेतों से कुछ दिनों तक चारा, सब्जी एवं भोजन का प्रयोग न करें।
- बचे हुए रसायन को अच्छी तरह ढक्कन से बंद करके सुरक्षित ठंडे स्थान पर रखें।
- छिड़काव के बाद कोई भी शारीरिक परेशानी हो तो तुरन्त चिकित्सक की सलाह लें तथा उपचार करायें।

निष्कर्ष

अधिक पैदावार लेने के लिए किसान आजकल कीटनाशकों का प्रयोग अधिक कर रहा है। हालाकि वह फसलों के मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इसका सबसे अधिक असर प्रयोग के दौरान किसान के स्वास्थ्य पर पड़ता है। ऐसे में किसानों को कीटनाशकों का प्रयोग करते समय खास सावधानी रखनी चाहिए। ये कीटनाशक जहरीले तथा मूल्यवान होते हैं जिनके प्रयोग की जानकारी न होने के कारण इनसे नुकसान भी हो सकता है। इसलिए कुछ बातों का ध्यान रखने के साथ-साथ इनके प्रयोग के समय क्या-क्या सावधानियाँ रखनी चाहिए, इसकी जानकारी किसानों को होना आवश्यक होता है कि उन पर लिखे हुए निर्देशों का पालन ठीक ढंग से किया जाए। जिसमें किसी प्रकार की लापरवाही न बरती जाए। क्योंकि थोड़ी सी भी असावधानी होने से बहुत बड़ा नुकसान हो सकता है।

❖❖

सरसों एवं तोरिया के प्रमुख हानिकारक कीट व नियंत्रण

एन आर रंगारे[1],* स्मिता बाला रंगारे[2] एवं सृष्टि मेहरा[3]

[1 & 2] इंदिरागांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर

[3]जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : nrrangare@yahoo.co.in

परिचय

भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में अनाज वाली फसलों के बाद तिलहनी फसलों का दूसरा स्थान है। दुनिया के 16 प्रतिशत क्षेत्रफल में तिलहन का उत्पादन किया जाता है, जिसमें अकेले 10 प्रतिशत उत्पादन भारत में किया जाता है। सरसों एवं तोरिया रबी मौसम में उगाई जाने वाली भारत की तिलहनी फसलों में प्रमुख स्थान पर है। सरसों एवं तोरिया के तेल का प्रमुख रूप से उपयोग खाना पकाने में प्रयोग होता है तथा दाने से तेल निकालने के बाद जो खली बचती है। उसका उपयोग पशु आहार के रूप में करते है, जो पशुओं के लिए प्रोटीन (40-45 प्रतिशत) का सबसे प्रमुख स्त्रोत है। इसके साथ-साथ उद्योगों में भी साबुन, ल्यूब्रिकेंट तेल, वार्निश इत्यादि बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में उपयोग होता है। तिलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए वर्ष 1986 में भारत सरकार के द्वारा तिलहन तकनीकी मिशन एवं 11 वी और 12 वी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय तिलहन और पाम ऑयल मिशन की स्थापना के बाद इन फसलों के क्षेत्रफल एवं उत्पादकता में वृद्धि हुई, जिससे कि हमारा देश तिलहनों में आत्मा निर्भर हो सका। कीटों के द्वारा सरसों एवं तोरिया की फसल को लगभग 25-40 प्रतिशत तक क्षति होती है। अतः सरसों एवं तोरिया की अच्छी पैदावार लेने के लिए कीटो का एकीकृत प्रबंधन जरूरी है। प्रस्तुत लेख में सरसों एवं तोरिया के प्रमुख हानिकारक कीटों के द्वारा क्षति करने का तरीका एवं उनके प्रबंधन के बारे में जानकारी दी जा रही है।

(क) माहूं

क्षति का स्वभाव : यह सरसों का प्रमुख हानिकारक कीट है। इनके लिए 8 से 25^{0}C तापमान अनुकूल होता है। इनकी वृद्धि बादल लगने व कोहरे में अधिक होती है। यह नवम्बर के अंतिम सप्ताह से फरवरी तक पौधे पर दिखाई देता है। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ दोनो ही नाजुक पत्तों, कली एवं फलियों का रस चूसते है, परिणामस्वरूप फसल की वृद्धि रूक जाती है तथा पौधे कमजोर हो जाते है। ये कीट पौधों का रस चूसने के साथ-साथ अपने उदर से चिपचिपा मधु के समान रसस्त्राव करते है, जिस पर बाद में काली फफूंद विकसित हो जाती है। जिसके कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित हो जाती हे। जिससे पौधे अपना भोज्य पदार्थ नहीं बना पाते है।

प्रबंधन

- सरसों की बुआई अक्टूबर माह में करने से प्रकोप कम होता है।
- पौधे के तने अथवा अन्य भाग जहाँ माहूं की कालोकी दिखाई दें, उसको तोड़कर नष्ट कर दें।
- फसल में नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग न करें।
- पीले चिपचिपे ट्रैप का प्रयोग करने से मांहू ट्रैप पर चिपक कर मर जाते है।
- परभक्षी कॉक्सीनेलिड्स अथवा क्राइसोपरला कार्निया का संरक्षण कर 50,000-100,000 अंडे या सूंडी/हे. की दर से छोडे।
- जैविक कीटनाशक नीम का तेल 5 मि.ली./ली. का 10 दिनो के अंतराल पर छिड़काव करें।
- बी.टी. का एक कि.ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- वर्टिसिलियम लेकानाई (रोगकारक कवक) का माहूं का प्रकोप होने पर छिड़काव करें।
- आवश्यकता होने पर इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. (0.5 मि.ली./ली.) या थायोमेंथाक्जाम 25 डब्ल्यू.जी. (0.35 ग्राम/ली.) या फेनप्रोथ्रिन 30 ई.सी. (0.75 ग्राम/ली.) या डाइमेंथोएट 30 ई.सी. (2 मि.ली./ली.) या मेंटासिसटाक्स 25 ई.सी. (2 मि.ली./ली.) का 10 से 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करे।

(ख) लीफ माइनर (मटर का पर्णखनक)

क्षति का स्वभाव : यह कीट फसल वृद्धि अवस्था से लेकर फली अवस्था का नुकसान पहुँचाता है। इस कीट की सूंड़िया पत्तियों में टेड़े-मेंढ़े सुरंग बनाकर अंदर से ऊतकों को खाकर खत्म कर देता है। जिसके कारण पूरी पत्ती में सफेद गैलरी सी बन जाती है, और पत्तियाँ मुरझाकर सूख जाती है।

प्रबंधन

- खेत से प्रभावित पौधों एवं निचले भाग पर कीड़े से प्रभावित पुरानी पत्तियों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।
- नीम के उत्पाद जैसे एजाडिराक्टिन 0.03 मि.ली./ली. का 10 दिन के अंतराल में छिड़काव करें।
- आवश्यकता होने पर इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. (0.5 मि.ली./लीटर) या थायामेंथेक्जाम 25 डब्ल्यू.जी. (0.35 ग्राम/लीटर) या क्यूनालफॉस 25 ई.सी. (20 मि.ली./लीटर) का 10 से 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

(ग) आरा मक्खी

क्षति का स्वभाव : यह मक्खी पत्तियों पर आरा जैसे छेद करके अण्डे देती है, इसलिए इस कीट को आरा मक्खी कहते है। इस कीट के मैगंट पत्तियों में छेद बना देते है तथा किनारों को काट देते है। मैगंट का प्रकोप सुबह व शाम के समय अधिक होता है। इसका प्रकोप बुआई 25-30 दिनों बाद फसल की आंरभिक अवस्था में ही हो जाता है।

प्रबंधन

- फसल की अगेती बुआई करनी चाहिए।
- मैंगट को सुबह एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए।
- नाइट्रोजन उर्वरक का अधिक उपयोग नहीं करना चाहिए।
- गर्मी के दिनों में गहरी जुताई करनी चाहिए।
- लार्वा परजीवी एम्साक्रोडम पोफलेन्स का संरक्षण करना चाहिए।
- अधिक प्रकोप होने पर मेंलाथियान 5 प्रतिशत चूर्ण 20-25 कि.ग्रा./हे. अथवा मेंलाथियान 50 ई.सी. 1 मि.ली./ली. पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

(घ) पत्तागोभी की तितली

क्षति का स्वभाव : यह भी सरसों का हानिकारक कीट है। प्रौढ़ कीट एक तितली होती है तथा फसल की विभिन्न अवस्थाओं में हानि पहुँचाती है। मादा अपने अण्डे पत्तियों पर समूहों में देती है। इनसे 5-10 दिन में सूड़ियाँ निकलते है, जो पत्तियों को खुरचकर खाते है तथा बाद में किनारों से काटकर एवं बीच में छेद बनाकर खाते है।

प्रबंधन

- खाली खेतो को गर्मी के दिनो में गहरी जुताई करनी चाहिए।
- तितलियों को जाल में फसाकर नष्ट किया जा सकता है।
- बी.टी. (बेसिलस थूरिनजिनेंसिस) का 800-1000 ग्राम/हे. की दर से छिड़काव करने से सूड़ियों को नष्ट किया जा सकता है।
- मेंलाथियान अथवा कार्बारिल 5 प्रतिशत धूल का 15-20 कि.ग्रा./हे. की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- क्विनालफॉस 25 ई.सी. या मेंलाथियान 50 ई.सी. का 1.5 मि.ली./ली. पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

(ङ) चितकबरा कीट या पैंटेड बग

क्षति का स्वभाव : यह भी सरसों एवं तोरिया का प्रमुख हानिकारक कीट हैं। इस कीट के प्रकोप से 35 प्रतिशत तक फसल की हानि पहुँच सकती है। इस कीट के प्रौढ़ तथा शिशु पत्तियों तथा तने से रस चूसते है, जिससे रस चूसने के स्थान पर गहरे काले रंग के धब्बे दिखाई देते है। प्रभावित पौधे में कलियाँ कमजोर आती है। इससे गुणवत्ता व उपज प्रभावित होता है।

प्रबंधन

- खेत की गहरी जुताई गर्मी में करनी चाहिए।
- सिंचाई करते समय क्रूड तेल इमक्शन का प्रयोग करना चाहिए।
- नीम तेल 3-4 मि.ली./ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें। इसमें 5 ग्राम टीपोल या सर्फ भी मिला देना चाहिए।
- मेंलाथियान 5 प्रतिशत अथवा कार्बारिल धूल का 15-20 ग्राम/हे., की दर से बुरकाव करना चाहिए।
- आवश्यकतानुसार मेंलाथियान 50 ई.सी. 1 मि.ली./ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

नोट : सरसों जाति की सभी फसलों पर फूल की अवस्था में ऐसे समय छिड़काव करें जब परागण कीटों एवं मधुमक्खियाँ को हानि न हो, अर्थात् सायंकाल के समय छिड़काव करें।

रोग प्रबंधक

(क) पाऊडरी मिल्ड्यू

क्षति का स्वभाव : सफेद गोला धब्बा पत्तें के दोनो तरफ विकसीत होता है। ठंड एवं बादलनुमा वातावरण होने पर पूरी पत्तियाँ, तना एवं फलियों को चपेट में ले लेता है।

नियंत्रण

- घुलनशील सल्फर पाऊडर 3 ग्राम/ली. पानी के घोल से 10-15 दिनों के अंतराल से 2 बार छिड़काव करें।
- आवश्यकतानुसार सल्फर धूल 12 कि.ग्रा./एकड़ (28-30 कि.ग्रा./हे.) के हिसाब से बुरकाव करें।
- पोटाश उर्वरक के उपयोग करने से रोग कम किया जाता है।
- डायनोकैप 0.5 लीटर को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव 10-15 दिनों के अंतराल में 2 बार करें।

(ख) व्हाइट रस्ट

क्षति का स्वभाव : पत्ते पर सफेद क्रिमी पीले रंग की उठे हुये दानेदार धब्बे बनते है, जो बाद में मिलकर एक बड़ा धब्बा बनते है।

नियंत्रण

- बीमारी की प्रारंभिक अवस्था में मैंकोजेब 75 प्रतिशत हेक्टर प्रति दवा 2 ग्राम/हे. पानी में घोलकर छिड़काव करें। 15 दिनों के बाद इसे पुनः दोहराएँ अथवा मेंटालाक्सिल (रीडोमिलर्ड) का 2 ग्राम/ली. पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

(ग) डाउनी मिल्डयू

क्षति का स्वभाव : पत्ते के निचले भाग पर मध्यम उजले रंग की पाऊडर नुमा धब्बे विकसीत होते हैं, जिस पौधे में यह रोग लगता है, उसमें फलियाँ नहीं बनती है।

- बीमारी की शुरूआत में मैंकोजेब 75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. दवा 2 ग्राम/ली. पानी में हिसाब से 10-15 दिनो के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करें।
- मेंटालाक्सिल दवा का खड़ी फसल पर रोपाई के 45 दिनो पर 2.5 ग्राम/ली. के हिसाब से छिड़काव करें।

(घ) क्लबरूट

क्षति का स्वभाव : रोगग्रस्ट पौधे बोने रह जाते है। पौधे मध्यम हरा से पीले होकर समय से पूर्व मुरझा जाते है।

नियंत्रण

फसल के बचाव हेतु वीटावेन्स फंफूदनाशक की 1 ग्राम मात्र का 4 ग्राम ट्राईकोडर्मा के साथ मिलाकर 1 कि.ग्रा. बीज का उपचार करना चाहिए।

निष्कर्ष

सरसों व तोरिया का हमारे जीवन में बड़ा महत्व है। इनका प्रयोग तेल के रूप में व पश्शु आहार दोनों के रूप में प्रयोग किया जाता है। अतः इनकी खेती भी व्यापक पैमाने पर की जाती है परन्तु इनके खेतों को हानिकारक कीट अत्यधिक नुकसान पहुँचाते है, जिससे उनकी उपज प्रभावित होती है यदि उपर्युक्त तथ्यों के द्वारा इन कीटों का नियंत्रण किया जायय तो किसान आर्थिक लाभ को उठा सकते हैं और हानि से बच सकते हैं।

❖❖

कृषि रसायनो के रख रखाव व प्रयोग करने में रखी जाने वाली सावधानियाँ

नरेन्द्र कुमार[1]* एवं एस. के. बिश्वास[2]

[1]डॉल्फिन (पी.जी.) इंस्टिट्यूट ऑव मेडिकल एण्ड नेचुरल साईंसिज, देहरादून

[2]चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रो. विश्वविद्यालय, कानपुर

पत्राचारकर्ता : narenderp.path@gmail.com

प्रस्तावना

अधिकतम व स्वस्थ उपज प्राप्त करने हेतु विभिन्न फसल पीडको (pests) यथा रोगजनक, कीट व खरपतवार आदि से फसल सुरक्षा अति आवश्यक है। फसल सुरक्षा में उपयोग होने वाले कृषि रसायन, जैसे कीटनाशी (insecticides), कवकनाशी (fungicides), खरपतवारनाशी (weedicides) व अन्य रसायन जो फसल सुरक्षा व उपज में मात्रात्मक (quanitative) व गुणात्मक (qualitative) वृद्धि के लिये उपयोग किये जाते है, प्राय: विषैले व पर्यावरणीय तथा जीवो के स्वास्थय की दृष्टि से भी हानिकारक होते है। इन रसायनो को खरीदते समय सावधानी रखना उतना ही आवश्यक है, जितना कि इनको उपयोग करते समय रखनी चाहिये। कृषि रसायनो को संस्तुत मात्रा (recomonded dose) से कृषि रसायनों को संस्तुत मात्रा से कम या ज्यादा प्रयोग नहीं करना चाहिए। इनके गलत या असावधानी पूर्वक प्रयोग करने पर किसान को या तो अनुमानित परिणाम नहीं मिलते हैं या फिर बहुत ही हानिकारक परिणाम सामने आते हैं। ये परिणाम मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये ही नही अपितु अन्य जीव जन्तुओ व पर्यावरणीय पहलुओ के प्रति भी हानिकारक सिद्ध होते है।

अतः कृषि रसायनो से किसी भी प्रकार की दुर्घटना, आर्थिक या पर्यावरणीय हानि से बचने के लिये संस्तुत रसायनो की ही खरीददारी करनी चाहिये। इनको प्रयोग करने के लिये कृषि वैज्ञानिको व रसायनो के पैकटो पर लिखे निर्देशो का पालन करना चाहिये।

कृषि रसायनो की खरीददारी में सावधानियाँ

उपयुक्त कृषि रसायन का चुनाव आम किसान के लिये विकट समस्या है। अग्रलिखित बिन्दुओ को ध्यान में रखते हुये सर्वोत्तम कृषि रसायन का चुनाव किया जा सकता है-

- पीडको (कीट, रोगजनक आदि) व उनकी तीव्रता की सही पहचान हो जाने पर ही संबन्धित पीडकनाशी का निर्धारण करना चाहिये।
- कृषि वैज्ञानिको द्वारा संस्तुत किये गये पीडकनाशी ही खरीदने चाहिये।
- आपका रसायन कितना विषैला है, इसकी जानकारी रसायन के पैकेट पर विभिन्न रंगो द्वारा दी जाती है। विषैलेपन का घटता क्रम इस प्रकार है- लाल, पीला, नीला, हरा।

- रसायनो को निष्क्रिय तिथि (expiry date) व उसमें उपस्थित सक्रिय अवयव (active ingradient) की मात्रा को देखकर ही खरीदना चाहिये।
- बिना पैकिंग, टूटी-फूटी या कटी-फटी पैकिंग में बिकने वाले रसायन नही खरीदने चाहिये।

कृषि रसायनो के भण्डारण में सावधानियाँ

उपयुक्त कृषि रसायनो के चुनाव व खरीददारी के बाद भी इन कृषि रसायनो का समुचित भण्डारण किसानो के लिये एक अलग तरह की समस्या है। कृषि रसायनो के भण्डारण में किसानो को अग्रलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिये-

- भण्डारण के लिये ऐसे खाली कमरो का इस्तेमाल करना चाहिये जो सूखे, ठण्डे व हवादार हो।
- भण्डारण बच्चो की पहुँच से दूर होने चाहिये।
- रसायनो का भण्डारण कभी भी शयनकक्ष या रसोई में नही करना चाहिये।

कृषि रसायनो के प्रयोग करने से पहले सावधानियाँ

किसान को कृषि रसायनो के प्रयोग से पहले निम्नलिखित सावधानियों को आत्मसात करके आर्थिक लाभ लेना चाहिये-

- रसायनो को उपयोग करने से पहले संबन्धित यंत्रो उपकरणो यथा स्प्रेयर आदि की जाँच कर लेनी चाहिये, ताकि बाद में रिसाव या असमान वितरण जैसी समस्यायें पैदा न हो।
- घरेलू बर्तनो का उपयोग रसायनो के मिश्रण आदि तैयार करने में कदापि न करे।

- रसायनो में पानी या अन्य कोई भी रेतिया (filer) हाथ से नही मिलाना चाहिये। इसके लिये दस्ताने व किसी छड़ी का प्रयोग करना चाहिये।
- रसायनो का खेत या फसल में प्रयोग करते समय मुँह सहित शरीर के सभी अंगो को मास्क या अन्य किसी कपड़े से ढक लेना चाहिये।
- रसायनो का छिड़काव शान्त मौसम में करना चाहिये। यदि छिड़काव के बाद वर्षा हो जाये, तो छिड़काव पुनः करना चाहिये।

कृषि रसायनो के प्रयोग में सावधानियाँ

कृषि रसायनो का प्रयोग इस तरह से करना चाहिये कि किसान को अनावश्यक खर्च वहन न करना पड़े और साथ ही साथ रसायन खेत में अपना अधिकाधिक प्रभाव दिखा सके। इसके लिये अग्रलिखित चरणो को अंगीकार करना किसान के लिये लाभकारी हो सकता है।

- उचित परिधानो (मास्क, अंगोछा आदि) का प्रयोग करते हुये रसायनो के पैकेट आँख व नाक से दूर रखते हुये खोले।
- रसायनो से बीज उपचार करते समय हाथो में दस्ताने पहनना अति आवश्यक है।
- बुरकाव, छिड़काव या बीज उपचार में रसायन की संस्तुत मात्रा का ही प्रयोग करना चाहिये।
- उपचारित बीजो को छाया में सुखाना चाहिये।
- सुबह का समय रसायनो के छिड़काव व स्प्रे के लिये सर्वोत्तम होता है। सुबह में नमी की मात्रा पर्याप्त होती है जिसके कारण रसायन के कण पौधो से आसानी से चिपक जाते है।
- रसायनो का फसल में प्रयोग करते समय कम से कम एक आदमी को सहायक के रुप में हमेंशा साथ रखे। यदि गलती से कोई रासायनिक दुर्घटना हो जाये, तो सहायक व्यक्ति प्रारम्भिक उपचार में मदद कर सके।
- स्प्रेयर की टंकी को पूरा नही भरना चाहिये। उसका कुछ भाग हमेंशा खाली रहना चाहिये।
- वायु की दिशा में गति करते हुये फसल में रसायनो का प्रयोग करना चाहिये।
- रसायनो का प्रयोग करते समय किसी भी पदार्थ (धूम्रपान, पान मसाला आदि) का सेवन न करे।

- रसायनो के प्रयोग के तुरन्त बाद पशुओ को नही दुहना चाहिये। यदि कभी ऐसा करना जरुरी हो जाये तो दुहने से पहले हाथो को साबुन से अच्छी तरह साफ कर ले।

कृषि रसायनो के प्रयोग करने के बाद सावधानियाँ

कृषि रसायनो के प्रयोग के बाद भी किसान की नैतिक जिम्मेंदारी बनती है कि वो उन फसलो व उसके उत्पादो (फल, सब्जी, चारा आदि) से खुद को व पशुओ को कुछ दिनो के लिये दूर रखें, साथ ही साथ उपयोग किये गये यंत्रो व रसायनो की बची हुयी पैकिंग्स का समुचित निस्तारण करे। कृषि रसायनो के प्रयोग के बाद अग्रलिखित सावधानियाँ किसान, उसके परिवार व पशुओ के हित में होती है।

- जिस फसल में रसायनो का प्रयोग किया गया है, पशुओ को उससे दूर रखना चाहिये व उस फसल से पशुओ के लिये चारा या शाक सब्जियाँ भी नही निकालनी चाहिये।
- खाली डब्बो या गत्ते की पैकिंग को बच्चो या पशुओ के पहुँच से दूर रखना चाहिये।
- रसायनो की खाली पैकिंग को गड्ढा खोदकर दबा देना चाहिये।
- प्रयोग किये गये यंत्रो को पानी से अच्छी तरह धुलकर रखे।
- अन्त में व्यक्ति को अपने सभी कपड़े साबुन से अच्छी तरह धुलने के बाद स्वयं भी साबुन से अच्छी तरह से स्नान कर लेना चाहिये।

निष्कर्ष

आधुनिक कृषि उत्पादन में कृषि रसायनों की मुख्य भूमिका है। कृषि रसायनों को पीडकनाशी (pesticides) भी कहा जाता है। विभिन्न प्रकार के कृषि रसायनों जैसे खरपतवारनाशी (weedicides), कीटनाशी (insecticides), कवकनाशी (fungicides) आदि को सम्मिलित रूप से पीडकनाशी (pesticides) कहा जाता है। कृषि में कीट व रोग हमेशा से ही किसानों व वैज्ञानिकों के लिए बहुत बड़ी चुनौती रहे हैं। वर्तमान में फसल सुरक्षा में इस्तेमाल होने वाली विधियों में पीडकनाशी आधारित विधियाँ ही मुख्य रूप से प्रयोग की जा रही हैं। महँगे रसायनों का खर्च उठाना अब किसानों के बस की बात नहीं रह गयी है। लगातार संश्लेषित कृषि रसायनों के प्रयोग से विभिन्न प्रकार की समस्यायें जैसे पर्यावरण प्रदूषण, रेजिडुअल प्रभाव आदि उत्पन्न हो रही है। यह ही नहीं पीडकों के प्रतिरोध स्ट्रेन उत्पन्न हो रहे हैं, जो फसल सुरक्षा की एक घातक समस्या है। अतः कृषि में रसायनों का लगातार अन्धाधुन्ध प्रयोग पर्यावरण, जैव विविधता व जीव जन्तुओं के स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत ही नुकसानदेह है। अतः केवल संस्तुत कृषि रसायनों का ही संस्तुत मात्रा में प्रयोग करना चाहिये। यही ही नहीं कृषि रसायनों के रख-रखाव में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिये ताकि रसायनों की क्रियाशीलता अधिकतम स्तर पर रहे व कृषि लागत भी ज्यादा न बढ़ पाये।

❖❖

आधुनिक कृषि एवं मृदा स्वास्थ्य हेतु फसल अवशेष प्रबंधन

सृष्टि मेंहरा[1]*, हेमंत राहंगड़ाले[2], नकुल राव रंगारे[3] एवं एन. आर. रंगारे[4]

[1]जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

[2]महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट

[3]राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रबन्ध संस्थान, हैदराबाद

[4]इंदिरागांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर

पत्राचारकर्ता : mehrashrishti@gmail.com

परिचय

सामान्यतः किसान अपनी सुविधानुसार फसल अवशेषों को खेतो में जलाकर इनका प्रबंधन करते है। जिससे उनकी कम लागत लगती है। इसके पीछे किसानों के अपने तर्क है कि कुछ फसलों का जैसे कि धान-गेहूँ के फसल अवशेष मिट्टी में जल्दी गलते नहीं है, साथ ही धान की रोपाई के समय खेत के किनारो पर गेहूँ के पौधों के अवशेष होने से मजदूरो के पैरों में चुभते है। इससे उनके कार्य करनें में बाधा उत्पन्न होती है। इन अवशेषों के प्रबंधन में धन, श्रमिक, समय आदि की अलग से आवश्यकता पड़ती है। दो फसलों के बीच उपयुक्त समय के अभाव की वजह से भी कृषक अवशेषों को जलाने के लिए बाध्य हो जाते है। उनका यह भी कहना है कि फसल अवशेषों को जला देने से खेत में मौजूद हर तरह की कीट-व्याधि एवं खरपतवार नष्ट हो जाते है तथा खेत साफ-सुथरा हो जाता है। इसके अलावा जलने के पश्चात् फसल अवशेषों की राख पोषक तत्व के रूप में मृदा की उर्वरता को बढ़ाती है, जिससे मृदा अच्छी पैदावार देती है परंतु इस तरह से फसल अवशेष प्रबंधन, खेत की मिट्टी, वातावरण, मनुष्य एवं पशुओं के लिए कितने घातक एवं गंभीर परिणाम देते है, इसका अंदाजा एवं जानकारी आज भी अधिकतर किसानों को नहीं है।

विगत दशको में भारतीय कृषि ने प्रत्येक क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है, परंतु साथ ही साथ कृषि विकास में तमाम तरह की चुनौतियाँ भी पैदा हुई है। इनमें फसल अवशेषो का प्रबंधन एक प्रमुख चुनौती के रूप में सामने उभर कर आया हैं। फसलों की कटाई के बाद बचे हुए डंठल, निराई तथा गुहाई के बाद बचे हुए पुआल, भूसा, तना तथा जमीन पर पड़ी हुई पत्तियों इत्यादि को फसल अवशेष के नाम से जाना जाता है। विगत दशकों में खेतीहर मजदूरों की लगातार घटती उपलब्धता एवं मजदूरी के बढ़ते खर्च की वजह से भारतीय कृषि में आधुनिक मशीनों का प्रयोग काफी बढ़ा है। वर्तमान समय में मशीनीकरण एक महत्वपूर्ण आवश्यकता के रूप में उभरकर सामने आया है। इस क्रम में कटाई व गुहाई के लिए कम्बाल हार्वेस्टर का प्रचलन विगत वर्षो में बहुत तेजी से पूरे देश में बढ़ा है। इसकी वजह से भारी मात्रा में फसल अवशेष खेत में पड़ा रह जाता है। इसका समुचित प्रबंधन वर्तमान कृषि में एक गंभीर चुनौती है।

अवशेषों को जलाने के दुष्परिणाम

हर वर्ष आमतौर पर अक्टूबर-नवम्बर माह में धान की कटाई के उपरांत 10 अवशेषों को जलाते है। इससे आसपास की हवा प्रदूषित एवं जहरीली हो जाती है। इसका स्पष्ट उदाहरण वर्ष 2016 में देखने को मिला जब दिल्ली की हवा इन्ही कारणों से विषाक्त हो गयी और जिसकी चर्चा समाचार पत्रों एवं टेलीविजन पर काफी की गई। सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों के बावजूद भी फसल अवशेष जलाने की प्रक्रिया अभी भी देश में बड़े पैमाने पर चल रही है। इससे होने वाली हानियाँ निम्नानुसार है–

- अवशेष जलाने से 100 प्रतिशत नाइट्रोजन, 25 प्रतिशत फॉस्फोरस, 20 प्रतिशत पोटाश और 60 प्रतिशत सल्फर का नुकसान होता है, जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति में गिरावट आती है।
- मृदा की संरचना में क्षति होने से पोषक तत्वों का समुचित मात्रा में स्थानांतरण नहीं हो पाता है तथा अतिरिक्त जल की निकासी भी नहीं हो पाती है।
- मृदा के कार्बनिक पदार्थो का ह्रास होता है।
- फसल अवशेषो से मिलने वाले पोषक तत्वों से मृदा वंचित रह जाति है।
- अवशेषों को जलाने से जमीन की ऊपरी सतह पर रहने वाले मित्र कीट तथा केंचुए आदि भी नष्ट हो जाते है, जिससे उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ता है।

फसल अवशेष प्रबंधन के विकल्प

वर्तमान परिदृश्य में कृषकों द्वारा पशुचारा के लिए अवशेष बचाकर बाकी को सामान्यतः जलाया या नष्ट किया जाता हैं। इससे पर्यावरण, मृदा उर्वरता, मानव एवं पशु स्वास्थ्य की क्षति होती है, जो गंभीर चिंता का विषय है। ऐसे में आवश्यकता है कि फसल अवशेषों के उचित प्रबंधन की। फसल अवशेष प्रबंधन के कुछ प्रमुख विकल्प इस प्रकार हैं-

- फसल अवशेषों को पशु चारा, औद्योगिक एवं अन्य उपयोग के लिए इकट्ठा करना।
- इन अवशेषों को खेत में जलाना।
- फसल अवशेषों को मिट्टी में मिश्रित करना।
- फसल अवशेषों को भूमि की सतह पर खेतों में रखते हुए संरक्षित कृषि प्रणाली को अपनाते हुए खेती करना।

अवशेषों को खेत में जलाना

किसी भी दृष्टिकोण से फसल अवशेषों को जलाना उचित नहीं है। अतः किसानों को फसल अवशेष प्रबंधन के इस विकल्प पर कतई अमल करने की जरूरत नहीं है। सामान्यतः कृषक पुरानी परंपरागत अवधारणा के तहत यह सोचते हैं कि फसल अवशेष को प्रबंधित करने का सबसे आसान एवं कम खर्चीला तरीका है, उसे जला देना। उनका सोचना है कि इसमें समय एवं श्रम कम लगता है और अगली फसल की तैयारी से पहले साफ हो जाता है। यही नहीं कीट, व्याधि तथा खरपतवार इत्यादि भी नष्ट हो जाते है।

- किसानों का यह भी मानना है कि फसल अवशेष जलकर राख के रूप में मिट्टी की उर्वराशक्ति को बढ़ाते है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अवशेषों के राख अल्प समय के लिए कुछ पोषक तत्व जैसे फॉस्फोरस एवं पोटाश प्रदान करते हैं और मृदा अम्लीयता को कम करते है, परंतु यह वैज्ञानिक सत्य है कि इस बहुत छोटे लाभ के एवज में किसान दूसरे पोषक तत्वों, जैसे नाइट्रोजन, सल्फर एवं कार्बनिक पदार्थ का बहुत नुकसान कर रहे है। इसके साथ ही अवशेष जलाने से मित्र कीट भी नष्ट हो रहे है।
- फसल अवशेषों को जलाने से मृदा की रचना/संरचना एवं उर्वरता प्रभावित हो रही है तथा जलने से पैदा हुए धुएँ से वातावरण प्रदूषित हो रहा है यह मानव एवं पशु स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है एवं जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारक है। संरक्षित कृषि प्रणाली के अंगीकरण एवं फसल विविधीकरण द्वारा अवशेष जलाने की समस्या से निजात मिल सकता है।

फसल अवशेषों को जलाने के दुष्प्रभाव

- अवशेषों को जलाने से उत्पन्न धुएँ से दमा जैसी बीमारियों से ग्रसित मरीजों को काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है। इन रोगों के मरीजों की संख्या में विगत वर्षो में तेजी से वृद्धि हुई है।
- अवशेषों को जलाने से उत्पन्न सल्फर डाई-ऑक्साइड व नाइट्रोजन डाई-ऑक्साइड के कारण आँखो में जलन होने लगती है।
- चर्म रोगों की शिकायत भी ऐसी परिस्थितियों में बढ़ जाती है।
- हाल के वर्षो में फसल अवशेष जलाने की वजह से कैंसर के मरीजों की संख्या में वृद्धि हुई है।
- यह वैश्विक तपन (ग्लोबल वॉर्मिंग) को बढ़ाने में सहायक है।
- आग लगाने से फसल अवशेषों के साथ-साथ किनारे एवं आस-पास के पेड़-पौधों एवं अन्य लाभकारी वनस्पतियों को भी नुकसान पहुँचता है।
- ओजोन परत का भी ह्रास होता है।
- अत्यधिक मात्रा में कार्बन डाई-आक्साइड के उत्सर्जन से पर्यावरण को नुकसान होता है।
- ग्रीन हाउस गैसों के अधिक मात्रा में उत्सर्जन से वैश्विक तपन को बढ़ावा मिलता है

फसल अवशेषों को मृदा में मिश्रित करना

- फसल की कटाई के उपरांत रोटावेटर से जुताई कर एक पानी लगा देने से फसल अवशेष मिट्टी में मिल जाते है। फिर बाद में अगली फसल की बुआई या रोपाई आसानी से की जा सकती है।
- धान व गेहूँ के अवशेषों की जुताई कर पानी लगा देने से इसका प्रबंधन संभव है। साथ ही 20-35 कि.ग्रा. यूरिया/हैक्टर की दर से डाल देने से अवशेषों की विगलन की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है।
- कार्बनीकृत धान के अवशेषों द्वारा मृदा का जैव उपचार करने से मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ने के साथ-साथ उत्पादन क्षमता भी बढ़ जाती है।

- फसल अवशेषों को कम्पोस्ट बनाने में उपयोग।
- संरक्षित कृषि के माध्यम से फसल अवशेषों का उपयोग
- गेहूँ की कटाई की बाद खड़े डंडे में जीरो टिलेज मशीन या टर्बो हैप्पी सीडर मशीन से मूँग या ढैंचा की बुआई कर फसल अवशेष प्रबंधन संभव है।
- धान की कटाई के बाद हैप्पी सीडर मशीन का प्रयोग कर जीरो टिलेज तकनीक से गेहूँ की बुआई करके प्रभावी ढंग से फसल अवशेष प्रबंधन किया जा सकता है।
- गन्ने की कटाई के बाद रोटरी डिस्क ड्रिल से गेहूँ की बुआई को बड़े पैमाने पर कर गन्ना फसल में प्रभावी अवशेष प्रबंधन किया जा सकता है।
- खड़ी कपास की फसल में गेहूँ की रिले क्रॉपिंग तथा खड़ी गेहूँ की फसल में मूंग की रिले क्रापिंग द्वारा फसल अवशेष का प्रभावी प्रबंधन किया जा सकता है। यह विधि अवशेषों को जलाने की प्रथा को रोकने में सहायक है।
- अवशेषों को पलवार/मल्च के रूप में खेतो में प्रयोग कर विभिन्न फसलों में खरपतवार के प्रकोप को भी कम किया जा सकता है, साथ ही मृदा की सेहत में सुधार किया जा सकता है।
- अवशेषों को सतह पर रखने से बोई गई फसल अपेक्षाकृत कम पानी की आवश्यकता होती है।
- इससे मृदा में पानी के प्रवेश की क्षमता में सुधार होता है तथा मृदा अपरदन में कमी आती है।
- इसमें तापमान का अनुकूलन होता है अर्थात् यह गर्मी में मृदा तापमान को कम रखता है तथा सर्दी में तापमान को बढ़ाता है।
- फसल की कैनोपी को ठंडा रखता है, जिसकी वजह से ताप का प्रभाव नहीं पड़ता है।
- संरक्षित कृषि के लिए एक तिहाई फसल अवशेषों को मृदा की सतह पर रखना अनिवार्य है।
- इस संरक्षित कृषि प्रणाली में खेत की तैयारी में लगने वाले समय, श्रम एवं खर्च की बचत होती है और उत्पादन भी परंपरागत विधि की तुलना में बेहतर होता है।
- फसल अवशेष सड़कर मृदा में कार्बनिक पदार्थ को बेहतर करने के साथ-साथ मृदा रचना/संरचना एवं उर्वराशक्ति को दीर्घकालिक कृषि योग्य बनाते है।
- कस्टम हायरिंग बेसिस पर राज्य सरकार द्वारा बेरोजगार पढ़े-लिखे नवयुवकों एवं स्वयं सहायता समूह को प्रशिक्षण देकर अनुदान के माध्यम से हैप्पी सीडर मशीन की उपलब्धता पंचायत स्तर पर कराने की आवश्यकता है।

संरक्षित कृषि को बढ़ावा देने हेतु नीति निर्धारण की आवश्यकता

- संरक्षित कृषि के बारे में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर समन्वय कर राज्य कृषि विभाग, कृषि विज्ञान केन्द्रो एवं सहायता समूहों के द्वारा कृषकों को जागरूक करने एवं प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है।
- फसल अवशेष प्रबंधन के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली मशीनों, टर्बो हैप्पी सीडर/जीरो टिलेज आदि पर विशेष अनुदान का प्रावधान कर इसके व्यापक प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है।
- फसल अवशेषों को जलाने से रोकने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्धारण करके, कानूनन इसे प्रतिबंधित करना अति आवश्यक हो गया है। हरियाणा व पंजाब में यह कानून लागू है, परंतु इस अन्य राज्यों में भी प्रभावी तौर पर लागू करना होगा।
- राज्यों की रिमोट सेंसिंग एजेन्सियों द्वारा उपग्रह के प्रयोग द्वारा फसल अवशेष जलाने की जानकारी व निगरानी की नितांत आवश्यकता है।
- विभिन्न राज्यों द्वारा बनाए गए कानून व उसके तहत दंड के प्रावधानो को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए। संरक्षित कृषि के अंतर्गत पूरे देश में संचार के विभिन्न माध्यमों जैसे दूरदर्शन, रेडियो, अखबार, पत्र-पत्रिकायें एवं आधुनिक संचार माध्यमों (आई.सी.टी.) जैसे किसान मोबाईल सेवा, वॉट्स ऐप इत्यादि के द्वारा किसानों को जागरूक किया जाये। इसके साथ ही फसल अवशेषों को जलाने से होने वाले नुकसानों के बारे में बताया जाए।
- अवशेष प्रबंधन करने वाले किसानों की सफलता गाथा को अधिक से अधिक प्रचारित करने लिए विभिन्न संचार माध्यमों को उपयोग किया जाए।
- इस विषय पर सोशल मीडिया के माध्यम से एक अभियान चलाकर लोगों को जागरूक किया जाय।

- अवशेष प्रबंधन पर नए-नए अनुसंधान कार्यो को बढ़ावा देने के लिए दिशा में कार्य करने हेतु विशेषज्ञों की राष्ट्रीय स्तर पर टीम बनाकर इसे गति प्रदान की जा सकती है।

देश के किसानों, संबंधित विभागों, संस्थानों एवं कृषि से जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं को अन्नदात्री मृदा, अपनी व पशुओं की सेहत का ख्याल रखने और सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्व के निर्वाह के लिए फसल अवशेषों के प्रबंधन का समुचित उपाय करना चाहिए। इस दिशा में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश) द्वारा पहल करते हुए वर्ष 2012 में पनागर क्षेत्र के कुछ गाँवो में फसल अवशेषों को नहीं जलाने की अपील कृषकों से करते हुए कृषक प्रक्षेत्र पर पूर्व फसल के अवशेषों को बिना जलाये/हटाये हैप्पी सीडर मशीन की सहायता से पहली बार गेहूँ की शून्य जुताई तकनीक द्वारा बुवाई का प्रदर्शन किया गया। प्रारंभिक नकारात्मकता के पश्चात् कुछ किसानों ने इसके परिणामों से संतुष्ट होकर इसे अपनाया और इस पर गंभीरता से सोचना एवं अन्य कृषकों को बताना शुरू किया। फलस्वरूप अगले वर्ष निदेशालय ने जबलपुर जिले के विभिन्न गाँवो में संरक्षित कृषि के अंतर्गत गेहूँ, चना, धान, मक्का एवं मूँग फसल में सैकड़ो की संख्या में प्रदर्शनी लगायी एवं किसानों में जागरूकता लाने के लिए प्रक्षेत्र दिवस का आयोजन किया। इसमें क्षेत्र के किसानो के अतिरिक्त कृषि विभाग, पंचायत सदस्यों, कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिक/कर्मचारियों को शामिल किया गया।

वर्ष 2014 से इस कार्यक्रम को जबलपुर के अतिरिक्त नरसिंहपुर, कटनी, मण्डला एवं सिवनी जिले के पाँच-पाँच गाँवो में 'मेरा गाँव मेरा देश' कार्यक्रम के तहत खरपतवार अनुसंधान निदेशालय द्वारा चलाया जा रहा है। विगत 5 वर्षो के परिणामों से पाया गया कि उन क्षेत्रो के किसानो ने इसके प्रति जागरूक होकर फसल अवशेषों को जलाना बंद कर दिया है, इतना ही नहीं संरक्षित कृषि को अपनाकर खेत की तैयारी में लगने वाले समय एवं खर्च की बचत करते हुए ये किसान आज ज्यादा फसल उत्पादन कर रहे है। मध्य प्रदेश शासन ने भी हैप्पी सीडर मशीन पर विशेष अनुदान का प्रावधान किया है परंतु अभी भी इसके व्यापक प्रचार-प्रसार एवं कस्टम हायरिंग बेसिस पर इस मशीन को गाँव स्तर पर उपलब्ध कराने की आवश्यकता है।

सारणी 1. विभिन्न फसलों का अवशेष उत्पादन

फसल	वार्षिक उत्पादन (मीट्रिक टन/वर्ष)	अवशेष उत्पादन (मीट्रिक टन/वर्ष)
धान	103.06	154.59
गेहूँ	94.04	159.86
मक्का	21.02	31.53
जूट	9.92	21.32
कपास	30.52	91.56
मूँगफली	6.89	13.78
गन्ना	346.72	138.68
सरसों	6.85	20.55
मिलेट्स (मोटे अनाज)	2.29	3.63
कुल	621.31	635.32

स्त्रोतः विस्तार बुलेटिन-59, (2016) भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान, करनाल।

सारणी 2. अवशेष जलाने से पोषक तत्वों का ह्रास

प्रमुख फसल	ह्रास (मीट्रिक टन/वर्ष)			
	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	कुल
धान	0.236	0.009	0.200	0.45
गेहूँ	0.079	0.004	0.061	0.14
गन्ना	0.079	0.001	0.033	0.84
कुल	0.394	0.014	0.295	0.143

स्त्रोतः जैन निवेदिता व सहयोगी एरोजोला एंड क्वालिटी रिसर्च 14:422-430, 2014

देश में कृषि अवशेषों का प्रबंधन जरूरी

एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में सलाना 635 मीट्रिक टन फसल अवशेष पैदा होता है। इसमें 58 प्रतिशत धान्य फसलों से, 17 प्रतिशत गन्ना, 20 प्रतिशत रेशा वाली फसलों, 3 प्रतिशत दलहनी तथा 5 प्रतिशत तिलहनी फसलों से प्राप्त होता है। इनमें से बड़ी मात्रा में (लगभग 62 प्रतिशत) फसल अवशेषों का कोई सार्थक उपयोग नहीं होता है, फलस्वरूप वह नष्ट हो जाता है। फसल जलाने की की प्रक्रिया पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में व्यापक रूप से अपनाई जाती है। इसके अलावा आंध्रप्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं

बिहार आदि राज्यों में भी फसल अवशेष जलाने की प्रथा तेजी से चल पड़ी है और बदस्तूर जारी है। फसल अवशेष प्रबंधन की आधुनिक विधियों की जानकारी न होने अथवा होते हुए भी कृषक समुदाय का उदासीन बना रहना उचित नहीं है। आज पंजाब व हरियाणा जैसे कृषि में विकसित राज्यों में भी मात्र 10 प्रतिशत किसान की फसल अवशेषो का समुचित प्रबंधन कर रहे है।

फसल अवशेषों को पशुचारा, औद्योगिक एवं अन्य उपयोग

- गेहूँ एवं मक्का के फसल अवशेषों का भूसा बनाकर पशु चारे के रूप में उपयोग।
- धान के पुआल/फसल अवशेषों का पशु चारे के रूप में प्रयोग (यद्यपि इसमें सिलिका की मात्रा काफी अधिक है)। धान के पुआल का यूरिया/कैल्शियम हाइड्रो-ऑक्साइड से उपचार कर या फिर प्रोटीन द्वारा संवर्धन कर पशु चारे के रूप में उपयोग।
- पुआल को भूरे/सफेद तथा मुलायम सड़न कवकों के प्रयोग द्वारा उपचारित कर गुणवत्ता में सुधार करके चारे के रूप में उपयोग।
- पुआल को छोटे-छोटे टुकड़ो में काटकर वाष्प् से उपचारित कर चारे के रूप में उपयोग।
- स्ट्रा बेलर द्वारा खेत में पड़े फसल अवशेषों का ब्लॉक बनाकर कम जगह में भंडारित कर चारे में उपयोग।
- फसल अवशेषों का मशरूम की खेती में सार्थक प्रयोग।
- धान एंव अन्य फसलों के अवशेषों का गैसीकरण कर ऊर्जा का उत्पादन किया जा सकता है। कई कंपनियाँ धान के पुआल से बिजली पैदा कर रही है। यह फसल अवशेष का एक प्रभावी प्रबंधन है। देश के मुख्य चावल उत्पादक राज्यों में बड़े पैमाने पर इसे प्रसारित करने की आवश्यकता है।
- कल्पतरू पावर ट्रांसमिशन लिमिटेड, जो कि अंतर्राष्टीय स्तर की ख्याति प्राप्त पावर सेक्टर की अग्रणी कम्पनी है। राजस्थान के गंगानगर एवं टोंक जिले में फसल अवशेषों को विशेष रूप से सरसों की फसल का 80,000 टन बायोमास का प्रयोग कर उससे 1.5 लाख किलोवाट बिजली का उत्पादन प्रति वर्ष कर रही है।
- फसल अवशेषों के प्रभावी प्रयोग जैसे : गत्ता, झोंपड़ी, चटाई, खिलौने एवं मूर्तियाँ बनाना इत्यादि नए-नए वैकल्पिक उपयोगों का पता लगाने की नितांत आवश्यकता।
- उन्नत विधियों का प्रयोग कर इन अवशेषों से कम्पोस्ट खाद तैयार करना।
- फसल अवशेषों का बायोफ्यूल एवं बायों ऑयल उत्पादन में प्रयोग।

निष्कर्ष

फसल अवशेष को मिट्टी में जलने से वातावरण में प्रदूषण ज्यादा होता है, जिससे स्वास्थ्य सम्बन्धी बीमारियों की संभावना बढ़ जाती है। इससे उत्पन्न धुंध के कारण सूर्य की किरणें फसलों तक कम पहुँचती है, जिससे फसलों में प्रकाश संश्लेषण और वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया प्रभावित होती है जिससे भोजन बनाने में कमी आती है। इसस कारण फसलों की उत्पादकता व गुणवत्ता प्रभावित होती है। अतः धान के बचे हुए अवशेषों (पराली) को जमीन में मिला दें इससे मृदा की उर्वरकता बढ़ती है, साथ ही यह पलवार का भी काम करती है, जिससे मृदा से नमी का वाष्पोत्सर्जन कम होता हे। नमी मृदा में संरक्षित रहती है। धान के अवशेषों को सड़ाने के लिए पूसा डीकंपजोर कैप्सूल का उपयोग @ 4 कैप्सूल/हेक्टेयर किया जा सकता है।

❖❖

अलसी उत्पादन की नई नकनीक

आर एल राउत[1]*, कमलेशवर गौतम[2] एवं रमेश अमूले[3]

[1,2,3]कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट (बड़गॉव)

पत्राचारकर्ता : rsjm_rait71@yahoo.com

परिचय

अलसी नमी संरक्षण की दशा में एवं कम सिंचाई की व्यवस्था में उगाई जाती है। अलसी के फसल के लिये भूमि में उचित जल निकास की व्यवस्था होनी चाहिए। अलसी के फसल हेतु पी.एच. मान 6.5 से 8.5 के मध्य होना चाहिये। फली भरने की स्थिति में, नमी की कमी होने पर तेल की मात्रा कम हो जाती है। अलसी वर्षा आधारित या दो सिंचाई उत्पादन वाले क्षेत्रों मे उगाई जाती है।

उपयुक्त जातियाँ

- **असिंचित अवस्था** - जवाहर-9, जवाहर-552
- **सिंचित अवस्था** - किरण, नीलम, लक्ष्मी-27
- **दाने एवं रेशे वाली जातियाँ** - रश्मि, मीरा, पार्वती

भूमि की तैयारी

उचित जल निकास वाली खेत की मिट्टी भुरभुरी, नीदारहित एवं खेत का ढाल समरूप होना, फसल के लिए फायदेमंद होती है।

बीज एवं बीजोपचार

अलसी की फसल हेतु 20 किग्रा. बीज/हे. प्रयोग करें। रेशे वाली किस्मों के लिये बीज दर 45 कि. ग्रा. / हैक्टयर रखें। फसल बोने से पूर्व बीज को 3 ग्राम थायरम/कि. ग्रा. बीज से उपचारित करें।

उर्वरक/खाद

80 किग्रा. नत्रजन, 40 किग्रा. स्फूर एवं 20 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। नत्रजन की आधी मात्रा (40 किग्रा.) बोने के समय तथा शेष 40 किग्रा. नत्रजन पहली सिंचाई के समय डालें। इसके अतिरिक्त अधिक उपज व तेल की गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए जिन्क सल्फेट 20 कि. ग्रा./हैक्टर तथा सल्फर 5 कि. ग्रा./हैक्टर की दर से डालना लाभदायक पाया गया है।

सिंचाई

अलसी के लिये केवल दो सिंचाईयाँ पर्याप्त है। पहली बोने के 35 दिन पर तथा दूसरी 70 दिन बाद करनी चाहिए। सिंचाई मेड़ मिट्टी विधि से करें ताकि आवश्यकता से अधिक पानी न भरें। रशे वाली किस्मों में तीन सिंचाई आवश्यक है।

खरपतवार नियंत्रण

बुवाई से 30-35 दिन तक खेत में खरपतवार नहीं रहना चाहिए। अंकुरण पूर्व मौसमी खरपतवारों के नियंत्रण हेतु पेंडामेथीलीन 1 कि. ग्रा. प्रभावी तत्व 750 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से बुआई पश्चात छिड़काव करें।

रोग नियंत्रण

अलसी फसल मुख्य तौर से गेरूआ, भूतिया एवं उकरा रोगों से ग्रसित होती है। उगरा रोग नियंत्रण के लिए थाइरम या बेविस्टीन 2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज दर से उपचारित करें, भभूतिया रोग हेतु सल्फेक्स 0.2 प्रतिशत घोल एवं गेरूआ रोग के लिये डाइथेन एम-45 (0.2 प्रतिशत) घोल का छिड़काव करें।

कीट नियंत्रण

अलसी फसल में फली मक्खी का प्रकोप अधिक होता है। इसके अतिरिक्त चने की इल्ली का भी आक्रमण होता है। फलभख्खी के नियंत्रण हेतु क्लोरपायरीफास 2 मिली/ली. इंडोक्साकार्ब 0.6 मिली/लीटर के घोल का छिड़काव करें।

उपज

उन्नत जातियों से 15 से 17 क्विंटल तक दाने की उपज ली जा सकती है। रेशे वाली किस्मों से 500 से 900 क्विंटल रेशा तथा 10 क्विंटल तक दाने की उपज प्राप्त की जा सकती है।

अलसी की उन्नत किस्मों का विवरण

अलसी के विभिन्न किस्मों का विवरण निम्नलिखित है-

(अ) असिंचित व सिंचित अवस्थाली वाली फसलें

नीलम - यह जाति 135-140 दिन की अवधि में

पककर तैयार होती है। उपज क्षमता सिंचित अवस्था में 1500 किग्रा/हे. है। दानें भूरे छोटे टहनी फैलने वाली, रतुआ, उकता और सूखा सहन करने वाली 44 प्रतिशत तेल होता है।

लक्ष्मी-27 - यह जाति 115 दिन में तैयार हो जाती है। उपज क्षमता 1260 किग्रा सिंचित एवं 1020 किग्रा/हे. असिंचित खेती से प्राप्त होती हैं । दाने गहरे भूरे, बडे, रतुआ रोधी, चूर्णी फफूँद प्रतिरोधी तथा 45 प्रतिशत तेल होता है ।

जवाहर-552 - यह जाति 117 दिन में पकती है । उपज क्षमता 900 किग्रा/हे. असिंचित दशा में प्राप्त होती है । भूरे मध्यम बड़े दाने वाली, रतुआ उकता एवं चूर्णी फफूँद से मध्यम रोधित तथा 44 प्रतिशत तेल होता है।

किरण - यह किस्म 122 दिन में पकती है । उपज 750 किग्रा./हे. असिंचित दशा में प्राप्त होती है। मध्यम कैप्सूल, हल्के, भूरे दाने वाली रतुआ उकता, चूर्णी फफूँद रोधी एवं 43 प्रतिशत तेल पाया जाता है ।

जवाहर-9 - यह किस्म 115-125 दिन में पककर तैयार होती है । उपज 1250 किग्रा./हे. सिंचित, 1000 किग्रा./हे. असिंचित दशा में प्राप्त होती है। सफेद फूल, हल्के भूरे मध्यम मोटे दाने वाली उकता एवं चूर्णी फफूँद रोधी एवं 42 प्रतिशत तेल होता है ।

(ब) दाना एवं रेशा वाली किस्में

रश्मि - यह जाति 140 दिन में पककर तैयार होती है। दाने की उपज 1003 किग्रा/हे. 719 कि.ग्रा./हे. रेशा उपज प्राप्त होती हैं । अत्यन्त हल्का नीला फूल, लम्बी मध्यम दाने वाली चूर्णी फफूँद, रतुआ, उकता रोधी, अंगमारी एवं कलीकीट से मध्यम रोधित, तेलांश 41 प्रतिशत ।

मीरा - यह किस्म 130 दिन में पककर तैयार हो जाती है । इसकी उपज 1439 कि.ग्रा./हे. दाना एवं 1011 कि.ग्रा./हे. रेशा उपज प्राप्त होती है। बैंगनी नीला फूल भरे दाने वाली, रतुआ, उकटा, चूर्णी फफूँद रोधी, अंगमारी से मध्यमरोधी, कली कीट से सहनशील तेलांश 42 प्रतिशत होता है।

पार्वती - यह किस्म 140-146 दिन की अवधि में पककर तैयार हो जाती है। 1600 किग्रा./हे. दाना के साथ 1026 किग्रा./हे. रेशा प्राप्त होता है । नीला फूल, हल्का भूरे, मध्यम दाने वाली, रतुआ एवं चूर्णी फफूँद रोधी, अंगमारी, उकता एवं कलीकीट से मध्यम रोधित तेलांश 42 प्रतिशत हाता है।

निष्कर्ष

अलसी के उत्पादन से किसान अधिक आय प्राप्त कर सकते है। सबसे अच्छी बात यह है कि यह बारानी खेती के लिये उपयुक्त है। अलसी में पाये जाने वाले ओमेगा-3 वसीय अम्ल हृदय रोग के लिये अत्यंत लाभदायक है, वर्तमान में खाद्य तेलों की कीमतें भी तेजी से बढ़ी हैं ऐसे में अलसी की खेती निश्चित ही किसानों के लिये लाभप्रद साबित होगी।

❖❖

मटर (पाईसम सटाईवम) की खेती की उन्नत तकनीकी

एस.एल. वास्केल[1], ए.के. त्रिपाठी[2] , मयंक मेहरा[3] एवं सुनील कुमार जातव[4]

[1,2,3] कृषि विज्ञान केन्द्र, सागर, बिजौरा, देवरी, सागर

[4]कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट

पत्राचारकर्ता : sukhlalwaskel98@gmail.com

परिचय

भारत में मटर की खास माँग है, अनेकों तरह के व्यंजनो में इनका उपयोग किया जा रहा है, जैसे मटर के हरे दानों को परिरक्षण करके काफी दिनों तक हरी मटर के रुप में उपयोग किया जाता है। भारत में मुख्य रुप से उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, हिमांचलप्रदेश, दिल्ली और मध्यप्रदेश है। यह एक फूल धारण करने वाली द्विबीजपत्री पौधा है,जिसकी जड़ गाँठों के रुप में होती है। मध्यप्रदेश में मटर की खेती मुख्य रुप से सागर, सीहौर, पन्ना, टीकमगढ, दमोह, रायसेन, सतना, दतिया, ग्वालियर, मण्डला, रतलाम एवं धार का मालवा क्षेत्र आदि जिलो में की जाती हैं। सफेद फूल वाली मटर सब्जियों के लिये उगाई जाती है। जिसे मीठी मटर के नाम से भी जाना जाता है, जो 40-50 दिनों में तुड़ाई के लिये तैयार हो जाती है और 40-90 दिनों में अपना जीवनकाल पूर्ण कर लेती है। लाल फूल वाली मटर (पीली मटर) बीज उत्पादन के लिये किया जाता है, जिसका उपयोग दाल, बेसन, एवं छोले के रुप में किया जाता है। जो 80-110 दिनों में तुड़ाई के लिये तैयार हो जाती है और 90-140 दिनों में अपना जीवनकाल पूर्ण कर लेती है। मटर की उत्पादकता बढ़ाने के लिये उन्नत तकनीक अपनाना अति अवश्यक है।

भूमि का चुनाव

मटर की खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जाती है, परन्तु दोमट या बलुई मिट्टी जिसका पी.एच मान 5.5-6.5 उपयुक्त होता है, जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो।

जलवायु

फसल की उचित वृद्धि के लिये बुवाई के समय 22-25 डिग्री से. ग्रेड तथा फूल व फलियाँ बनते समय 15-18 डिग्री से. ग्रेड तापमान अच्छा माना जाता है।

भूमि की तैयारी

मटर की खेती की तैयारी के लिये 1-2 जुताई करके पाटा चलाकर खेत को समतल एवं भुरभूरा करना चाहिये। यदि खेत मे पहले से दीमक एवं तना मक्खी का प्रकोप है, तो

उपयुक्त किस्म

क्र.सं.	प्रजाती	अवधि (दिन)	उपज, बीज/ हरी फलियाँ ,क्वि./हे.	रिमार्क
1	जे. एम.-6	120-122		
2	प्रकाश	115-120		
3	अर्केल	60-65	50-60 हरी फलियाँ	अगेती
4	बेनविले	100	100 हरी फलियाँ	अर्द्ध पछेती
5.	आजाद पी			
6.	पुसा प्रभात	90-95	17.7 बीज	चुर्निल असिता प्रतिरोधि किस्म
7	के. पी.एम.आर. 400	110-125	20-22 बीज	पछेती
8	आई.पी.एफ.डी .99-13	100-105	20-25 बीज	पछेती
9	आई.पी.एफ.डी. 1-10	110-115	20-22 बीज	पछेता

10	आई.पी.एफ.डी. 99-25	110-115	20-25 बीज	पछेती
11	जवाहर मटर -1	40-60	120-125 हरी फलिया	अगेती
12	जवाहर मटर -4	70-80	123	मध्यम
13	वीअरपीएम-901-5			
14	पंत मटर-157	125-130	20-22	चुर्निल असिता, तना छेदक, प्रतिरोधि किस्म

अंतिम जुताई के समय फोरेट 10जी का 10-12 किलोग्राम/ हैक्टेयर खेत मे मिलाकर बुआई करे।

बीज की मात्रा

बीज की मात्रा, बीज के आकार एवं भार पर निर्भर करता है, परन्तु मटर के बीज की मात्रा उसकी ऊँचाई वाली किस्म और बौनी किस्म पर निर्भर करती है। ऊँचाई वाली किस्म की मात्रा- 70-80 कि. ग्रा./ है. करनी चाहियें जबकि बौनी वाली किस्म की मात्रा- 70-80कि. ग्रा./ है. होनी चाहिए।

बुवाई का उपयुक्त समय मटर की बुवाई

मटर की बुवाई 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर के बीच बुवाई की जाती है।

बुवाई का तरीका

मटर की बुवाई कतार में नाली हल, सीडड्रिल या सीडकम फर्टीड्रिल के द्वारा की जाती है।

दूरी : कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी ऊँचाई वाली किस्म 30 x 40 x 10 से.मी. व बौनी किस्म 22.5 x 10 से.मी. एवं बुवाई की गहराई 4-5 से.मी. रखना चाहिये।

बीजोपचार

रोगों एवं कीटों से बचाने के लिये बीजो को उपचार करके ही बुवाई करना चाहिये। कवकनाशी के रुप में कार्बेन्डाजिम एवं मेन्कोजेब से 2.5-3 ग्राम एवं रस चूसक कीटों से बचाव हेतु थायोमिक्जिम 2 ग्राम / कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिये। उसके बाद वायुमण्डलीय नत्रजन के स्थिरीकरण के लिये राइजोबियम लेग्युमिनोसेरम और भूमि अघूलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तन करने के लिये पी. एस. बी. कल्चर को 5-10 ग्राम / कि.ग्रा बीज की दर से उपचार करे।

उर्वरक की मात्रा

फसल में अनुशंसित उर्वरक की मात्रा मिट्टी परीक्षण के आधार पर बुवाई के समय प्रयोग करे।

उर्वरक की मात्रा कि.ग्रा.प्रति हेक्टयर

किस्म	नत्रजन	फास्फोरस	पोटास	सल्फर
ऊँचाई वाली किस्म	20	40	40	20
बौनी वाली किस्म	20	50	50	20

सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपयोगिता, मात्रा एवं प्रयोग का तरीका- मटर फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों अमोनियम हेप्टामोलिब्डेट 1 ग्राम /कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार कर बुवाई करे।

सिंचाई

मटर की फसल के लिये 2-3 सिंचाई की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई फूल आने के समय एवं दूसरी सिंचाई पहली सिंचाई के 25-30 दिन बाद करना चाहिये। पाला पड़ने की सम्भावना होने पर स्प्रिंकलर से हल्की सिंचाई करना चाहिये।

खरपतवार की निराई-गुड़ाई

मटर की फसल में 1-2 निदाई-गुडाई खुर्पी एवं कुदाल द्वारा उथली गहराई पर करना चाहिये। जिससे फसल के जड़ क्षेत्र मे वायु संचार बढ़ जायेगा और खरपतवार नियंत्रित होने से पौधे में शाखायें और उत्पादन में वृद्धि होती है।

खरपतवारनाशी

क्र.	दवा का नाम	सिफारिश की गई मात्रा/है.	उपयोग समय	पानी की मात्रा
1	पेण्डिमैथलिन	3 ली.	बुवाई से 1-2 दिन के अन्दर छिड़काव करे	500 ली. पानी प्रति है. की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

(क) भभूतिया रोग - इस रोग में पत्तियाँ, शाखाओं पर सफेद रंग का चूर्ण जैसा पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं। इस रोग नियंत्रण हेतु बीजोपचार थाइरम एवं कार्बेन्डाजिम का 2.5-3 ग्राम प्रति कि.लो की दर से उपचारित करे। खड़ी फसल में घुलनशील सल्फर 1.5-2 ग्राम या मेंकोजेब 3 ग्राम/लीटर का पर्णि छिड़काव करें।

(ख) मटर का रतूआ या रस्ट - संक्रमित पौधे की पत्तियों में आमतौर पर निचली सतह पर कई छोटे-छोटे नारंगी-भूरे रंग के दाने दिखाई देते हैं। गंभीर रुप से संक्रमित पत्तियाँ मुरझा जाती हैं ओर पौधें से गिर जाती हैं। इस रोग के नियंत्रण के लिये हेक्जाकोनाजोल 1-2 मि. ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 2-3 बार स्प्रे करना चाहिऐ।

कीट प्रबंधक

(क) मांहू - यह पत्तियाँ और फूल रस चूसते है। इसके नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोरोप्रिड 17.8 एस. एल. 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर स्प्रे करना चाहिऐ।

(ख) तना मक्खी - यह पत्तियाँ और तने का रस चूसते है। इसके नियंत्रण हेतु फोरेट 10 जी का 10-12 कि.लो. प्रति है. खेती की तैयारी के समय मिटट्ी में मिला देना चाहिये।

(ग) फली छेदक - यह फलियों मे छेद करके हानि पहुँचाते हैं। कीट प्रकोप होने पर प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. 17.8 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर स्प्रे करना चाहिऐ।

उपज - सूखी मटर 20-22 क्विंटल प्रति हैक्टेयर।

भण्डारण -मटर के बीज को अच्छी तरह सुखाकर जब नमी 8-10 प्रतिशत हो तब भण्डारित करना चाहिये।

निष्कर्ष

भारतवर्ष में मटर की खेती की बहुत ही आवश्यकता है। क्योंकि इसमें प्रोटीन की मात्रा के साथ-साथ भूमि में नाईट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य भी करती है। मटर से कई खाने के व्यंजनों को तैयार किया जाता है। किसान भाईयों इसकी खेती कर अच्छी आमदनी कमा सकते हैं। इसकी वैज्ञानिक तकनीक से खेती कर उपज में वृद्धि की जा सकती है।

❖❖

प्याज में एकीकृत रोग एवं कीट प्रबंधन

रोशन लाल राउत[1]*, कमलेशवर गौतम[2], रमेश अमूले[3]

[1, 2 & 3]कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट (बड़गॉव)

पत्राचारकर्ता : rshnramt71@yahoo.com

परिचय

सब्जी वर्ग की फलों में प्याज का एक महत्वपूर्ण स्थान है। सामान्यतः प्याज की खेती रबी मौसम में की जाती है। लेकिन अब इसकी खेती खरीफ एवं जायद मौसम में भी की जाने लगी है।

प्रमुख रोग

आर्द्रगलन (डेंम्पिंग ऑफ) रोग (पिथियम स्पसीज)

यह रोग नर्सरी (पौध शाला) में पौधा तैयार करते समय लगने वाला मुख्य रोग है। इस रोग के कारण अंकुरण के बाद छोटे पौधे जमीन की सतह से गलकर सूखने लगते है। मिट्टी में नमी की अधिक मात्रा या पानी की अधिकता, अधिक वर्षा तथा जल भराव अथवा उच्च तापमान अथवा एक ही स्थान पर पौध तैयार करना इत्यादि कारक इस रोग को बढ़ावा देते है। कभी-कभी इस रोग के कारण बीज अंकुरण पूर्व या अंकुरित होते ही सड़कर नष्ट हो जाते है।

प्रबंधन

- समुचित जल निकास वाली जगह पर पौधशाला क्षेत्र का चयन करें।
- पौधशाला क्षेत्र को बीजों की बुवाई पूर्व 20-25 दिनों तक 200-250 गेज की पॉलीथिन शीट से ढंक कर 'सौर उपचार' करें। ऐसा करने से कीटों, रोगों तथा खरपतवारों से मुक्ति मिलने के अलावा अच्छा अंकुरण एवं स्वस्थ पौध तैयार होगी।
- इस रोग की जैविक विधि से रोकथाम हेतु जैविक फफूँदनाशी ट्राइकोडर्मा विरिडी 10 ग्राम प्रति कि. ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद से मिलाकर क्यारियों में प्रतिवर्ग मीटर क्षेत्र की दर से अच्छी तरह मिलायें। अतः 1 कि.ग्रा. ट्राईकोडर्मा प्रति एकड़ क्षेत्र में भूमि उपचार हेतु इस्तेमाल करें।
- पौधशाला क्षेत्र के रासायनिक उपचार हेतु थायरम 5 ग्राम प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र कि हिसाब से क्यारियों में मिलायें।
- बुवाई पूर्व बीज उपचार-ट्राइकोडर्मा विरिडी 5 ग्राम या थीरम, कैप्टान या कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर बोये।
- यदि अंकुरण के पश्चात् क्यारियों में इस रोग के लक्षण दिखाई दें। तो पौध पर छिड़काव हेतु कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से आवश्यकतानुसार मात्रा में घोल तैयार कर 15-20 दिन तथा 25-30 दिन की पौध होने पर छिड़काव करें।

बैंगनी धब्बा (पर्पल लीफ ब्लॉच) रोग (अल्टरनेरिया पोरी)

यह प्याज व लहसुन का प्रमुख रोग है इस रोग से रोगी पौधो की पत्तियों पर हल्के भूरे तथा बैंगनी रंग के धब्बे बनते है। ये रोग अधिक नमी, लगातार वर्षा तथा उच्च तापमान (28-30 डिग्री सेंल्सियस) की स्थिति में अधिक लगता है। रबी मौसम की फसल पर शीत कालीन वर्षा होने पर तथा खरीफ मौसम में नमी की अधिकता होने पर इस रोग का प्रकोप ज्यादा होता है।

प्रबंधन

- ग्रीष्म कालीन जुताई कर खेत को धूप में खुला छोड़ दें।
- 2-3 वर्षीय फसल चक्र अपनायें तथा एक ही खेत में लगातार प्याज या लहसुन की फसल न उगायें।
- इस रोग की रोकथाम हेतु फफूँदनाशी, मैंकोजेब 0.25 प्रतिशत या क्लोरोथेनोनिल 0.2 प्रतिशत या रोवराल 0.25 प्रतिशत मात्रा में घोल तैयार कर 10-12 दिनों के अन्तराल पर करे। इस घोल का छिड़काव पौधरोपण के एक महीने के पश्चात् 2-3 बार करे। छिड़काव घोल में स्टीकर ट्राइटोन या सेन्डोविअ का इस्तेमाल करें।

पर्णकुचंन रोग (ग्लोमरेल्ला सिंगुलाटा)

भारत में यह रोग हाल ही में देखा गया है विशेषकर यह रोग खरीफ के मौसम में की जाने वाली फसल में होता है। पत्तियों का मुड़ना, घुंघराले रूप में दिखना, पीलापन आना एवं

पौधे की ग्रीबा (तना) अधिक लम्बी होना इस रोग की विशेषता है। साथ ही प्याज बल्व का आकार छोटा रहा जाता है एवं उत्पादन हानि होती है।

प्रबंधन

- बुआई से पूर्व थीरम द्वारा 2 ग्रा./किग्रा बीज की दर से उपचारित करे।
- फफूँदनाशक कुमान एल 0.3 प्रतिशत, इन्डोफिल जेड-78 0.25 प्रतिषत की दर से भूमि उपचारित करे।

रोमिल फफूँदी (डाउनी मिल्ड्यू) रोग (पेरनोस्पोरा डेसट्रक्टर)

यह भी प्याज का एक महत्वपूर्ण रोग है। ये उत्तरी भारत में सामान्य रूप से एवं अधिक आर्द्रता वाली जगह पर फसल में देखा जाता है, जिसमें पत्तियों पर हल्के भूरे रंग के रोयेदार धब्बे बनते है। इस रोग की उग्र अवस्था में पत्तियाँ पीली होकर सूखने लगती है।

प्रबंधन

- प्याज के बीज को बुवाई से पूर्व 12 दिन तक धूप मे रखे यह बीज को 410° पर चार घण्टे तक रखें।
- स्वच्छ फसल प्रबंध करें तथा फसल को खरपतवार रहित रखें।
- इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर इण्डोफिल एम-45, 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल तैयार कर शाम के समय फसल पर छिड़काव करें। यदि आवश्यकतानुसार हो, तो 10 दिन बाद दुबारा से यही छिड़काव करे।

स्टेम फिलियम रोग (स्टेमफिलियम बेसिकेरियम)

उत्तरी भारत में यह रोग सामान्य रूप से पाया जाता है। इस रोग के प्रकोप से शुरू की अवस्था में पत्तियों पर छोटे छोटे धब्बे बनते दिखाई देने लगते है। रोग प्रकोप की उग्र अवस्था में फूलों पर धब्बे दिखने लगते है एवं पत्तियों के सूखने से पौधे सूखकर नष्ट हो जाते है। बीज वाली फसल में रोग उग्रता 20-90 प्रतिशत एवं बल्व वाली फसल में 5-50 प्रतिशत तक पाई जाती है। रोग शुरूआत रोग प्रभावी पौध द्वारा मुख्य फसल में होती है।

प्रबंधन

- फफूँद रोगनाशी दवा थीरम, कैप्टान या कार्बेन्डजिम 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज दर से बीज उपचारित कर बोये।
- रोग प्रकोप शुरू की अवस्था में इन्डोफिल एम-45, 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल तैयार कर 10-12 दिनों के अन्तराल फसल में 2-3 छिड़काव करें। इसके पश्चात् डाईफेनकोजोल (30 मिली.) या टेबकोनेजोल अकेले या मेनकोनेजोल (500 ग्राम.) के साथ मिश्रण कर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें। पहला छिड़काव बीमारी के लक्षण आते ही करे। छिड़काव से पूर्व स्टीकर भी उपयोग में लाये।
- स्वस्थ फसल से ही बीज का चयन करे।
- 2-3 वर्षीय फसल चक्र अपनायें।

प्याज का आधारीय सड़न (फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम)

यह प्याज का बहुत हानिकारक रोग है। इस रोग के कारण पौधे के नीचे की पत्तियाँ पीली होकर सड़ने (बेसलरॉट) लगती है, जिससे पौधे की वृद्धि रूक जाती है तथा प्याज के कन्दों के निचले हिस्से में सड़न शूरू हो जाती है। यह रोग प्याज की खुदाई के समय अधिक नमी होने पर या वर्षा के होने पर तीव्र गती से फैलता है। यदि प्याज की फसल बीज पैदा करने के उद्देश्य से बोई गयी हो तब इस रोग का प्रकोप होने पर बीजोपचार में भी क्षति होती है। प्याज के गोदामों में भण्डारण के दौरान भी इस रोग के कारण कन्दो में सड़न की समस्या देखी जा सकती है।

प्रबंधन

- उचित व 2-3 वर्षीय फसल चक्र अपनायें।
- जल निकास का समुचित प्रबंध रखें।
- अन्य रोगों की रोकथाम में सुझाये गये फफुँदीनाशक दवाओं से बीज उपचारित करके ही बोंयें।
- **पौध उपचार हेतु :** कैप्टन या कार्बेन्डजिम 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल तैयार कर रोपाई पूर्व प्याज की पौध की जड़ों को 30 मिनट तक इस घोल में डुबोकर रखें। तत्पश्चात् शाम के समय रोपाई करें।
- प्याज की फसल को खरपतवार रहित रखें।

जीवाणु भूरा सड़न : (स्यूडोमोनास आइरूजिनोसा)

ये प्याज के भण्डारण के समय काफी घातक रोग है। यह रोग की शुरूआत प्याज बल्व के ऊपरी भाग (ग्रीबा) से होती है और दबाने पर इसमें दुर्गन्ध आति है। धीरे-धीरे पूरा प्याज सड़ जाता है। यह रोग विषेष कर भण्डारण से पूर्व प्याज

की सफाई एवं अच्छी तरह न सुखने के कारण होता है।

प्रबंधन

- प्याज बल्व को ठीक साफ एवं सुखा कर भण्डारित करे।
- प्याज की कटाई से पूर्व अगर वर्षा हो जाए, तो स्ट्रेप्टोमाइसिन 0.02 प्रतिशत का छिड़काव करे।

प्रमुख कीट

चूसक कीट थ्रिप्स (थ्रिप्स टेबेसाई)

ये आकार में छोटे जो कि 1-2 मि.मी. लम्बे कोमल कीट होते है। ये कीट सफेद-भूरे या हल्के पीले रंग के होते है। इनके मुखांग रस चूसने वाले होते है, जो कि सैकड़ों की संख्या में पौधो की पत्तियों के कक्ष (कोपलों) के अन्दर छिपे रहते है।

इस कीट की निम्फ एवं प्रौढ़ दोनो ही अवस्थायें मुलायम पत्तियों का रस चूसकर उन्हे क्षति पहुँचाती है। इन कीटों से प्रभावित पत्तियों में जगह-जगह पर सफेद धब्बे दिखाई देते है। जिनका अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ सिकुड़ जाती है। और पौधों की बढ़वार रूक जाती है तथा प्रभावित पौधों के कंद छोटे रह जाते है, जिससे उपज में कमी हो जाती है।

प्रबंधन

- इन कीटों का संक्रमण दिखाई देने पर नीम द्वारा निर्मित कीटनाशी (जैसे-ईकोनीम, नीारिन या ग्रेनिम) 3-5 मि.ली प्रति लीटर पानी की दर से आवश्यकतानुसार घोल तैयार कर शाम के समय फसल पर 10-12 दिनों के अन्तराल पर 2-3 छिड़काव करें।
- डाइमेथोएट 30 ई. सी. 650 मि.ली/600 ली पानी के साथ या मेटासिस्टॉक्स, 25 ई. सी., 1 ली./600 ली. पानी के साथ या इमिडाक्लोपिड़ 17.8 एस. एल. 5 मिली 15 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

प्याज की मक्खी/मैंगट (हाइलिमिया एन्टीकुआ) :

यह मक्खी प्याज की फसल का प्रमुख हानिकारक कीट है, जिनके द्वारा अपने मैंगट पौधों के भूमि के पास वाले आधारीय तना में दिये जाते है। मैंगटों की संख्या 2-4 तक हो सकती है, जिससे भूमि के पास वाला तने का भाग सड़कर नष्ट हो जाने से पूरा पौधा सूख जाता है। कभी-कभी इस कीट द्वारा फसल को भरी मात्रा में क्षति होती है।

प्रबंधन

- फसल की रोपाई पूर्व, खेत की तैयारी करते समय नीम की खली/खाद 3-4 क्विं. प्रति एकड़ की दर से जुताई कर भूमि में मिलायें।
- खेत की तैयारी करते समय कीटनाशी-क्लोरोपाईरीफॉस 1.5 प्रतिषत 10 किग्रा. या मिथाईल पैराथियान 2 प्रतिशत, 8 किग्रा. प्रति एकड़ की दर से जुताई करते समय भूमि में मिलायें तत्पश्चात् फसल की रोपाई करें।
- खड़ी फसल में इस कीट (मैंगट) का संक्रमण दिखाई देने पर कीटनाशी क्वीनालफॉस 2 मिली. प्रति लीटर पानी की दर से आवश्यकतानुसार मात्रा में घोल तैयार कर शाम के समय 2-3 छिड़काव करें।

नोट-फसल पकने या कन्द विकसित होने की अवस्था में किसी भी दैहिक कीटनाशियों का इस्तेमाल न करें।

निष्कर्ष

प्याज एक बहुत महत्वपूर्ण सब्जी है। साथ ही साथ शरीर के लिये अत्यंत उपयोगी है। वर्तमान समय में प्याज की व्यावसायिक माँग तेजी से बढ़ी है परन्तु प्याज की खेती में लगने वाले रोग उसको अत्यंत नुकसान पहुँचाते हैं जिससे किसानों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। उपरोक्त लेख में किये गये तथ्यों से यदि प्याज रोग का उपचार किया जाय तो किसान आर्थिक नुकसान उठाने से बच सकते हैं और उत्पादन भी बढ़ा सकते हैं।

❖❖

सेम की खेती

विजय बहादुर[1]*

[1]उद्यान विज्ञान विभाग, शुआटस, प्रयागराज

पत्राचारकर्ता : vijaybahadur2007@gmail.com

परिचय

सेम एक महत्वपूर्ण सब्जी है। इसमें प्रोटीन के अलावा कैल्शियम 210 मिग्रा., मैगनीशियम 34 मिग्रा., फॉस्फोरस 68 मिग्रा., सोडियम 56 मिग्री., पोटेशियम 74 मिग्रा. और अन्य विटामिन अच्छी मात्रा में पायी जाती है। उत्तार प्रदेश में इसकी खेती की अच्छी सम्भावनायें हैं और कई कृषक इसकी खेती सफलतापूर्वक कर रहें हैं। इसकी सफल उत्पादन हेतु कुछ बातों का विशेष ध्यान रखें जैसेः-

किस्सों का चुनाव

अच्छी उपज देने वाली किस्में जैसे पूसा अर्ली प्रालिफिक, Co-1, Co-2, Co-8, दीपालीवाल -37, जेडीएल-53, जेडीएल-79 IIHR-sel-1, IIHR-sel.2, रजनी HB-18, आदि का चुनाव करें।

प्रमुख उन्नतशील प्रजातियाँ का वर्णन

(क) पूसा अर्ली प्रालिफिक : यह बेल वाली किस्म है। इसकी फलियाँ लम्बी तथा गुच्छों में लगती है। हरी फलियों की उपज 100-120 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

(ख) कल्याणपुर टाइप-2 : इसके फूल और फलियाँ गुच्छों में आती हैं। फलियाँ सफेद, चौड़ी, चपटी और रसदार होती हैं। एक गुच्छे में 8-12 फलियाँ लगती है। बीज काला, चिकना व बड़ा होता है। फलियों की उपज 16-17 टन तथा बीज की उपज 3-5 क्विंटल/हेक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

(ग) पूसा सेम-2 : इसकी फलियाँ काफी चौड़ी गहरे हरे रंग की होती हैं। इसकी औसत पैदावार 16 टन प्रति हेक्टेयर है।

(घ) रजनी : इसकी फलियाँ गहरे रंग की 12 सेमी. तथा 1.2-1.5 सेमी. चौड़ी होती है। एक फली में 5-6 बीज होती हैं। बीज काले भूरे रंग के होते हैं। हरी फलियों की उपज 14-15 टन तथा बीज की 5-6 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

(ङ) कोंकण भूषण : पौधा झाड़ीदार, दीप्तिकालिता के प्रति असंवेदनशील होती है। इसकी फलियाँ मुलायम, हरी तथा सीधी होती हैं। प्रति पौधा 125-180 फलियाँ प्राप्त होती है। इसकी औसत उपज 8-10 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

(च) अर्का जय और विजय : ये झाड़ीदार सेम हैं । दीप्तिकालिता के प्रति असंवेदनशील होते हैं। ये गर्मी और सूखे के प्रति सहनशील होते हैं। ये दोनों उत्तम पाक गुणवत्ता वाली किस्में हैं। 75 दिनों की अवधि में औसत उपज 80-90 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। अर्का जय सब्जी हेतु, जबकि अर्का विजय सब्जी एवं दानों दोनों के लिये उपयुक्त है।

भूमि का चुनाव

हल्की बलुई-दोमट मिट्टी इसके लिये उपयुक्त है। भारी मिट्टी इसकी खेती के लिये उपयुक्त नहीं होती है। ध्यान रखें मिट्टी में प्र्याप्त जीवांश की मात्रा हो और पानी निकास सवोत्ताम हो।

बुआई का समय

जून में खेत की अच्छी तैयारी कर जुलाई-अगस्त में बुआई करनी चाहिये। लता वाली सेम के लिये 1 x 1मी. की दूरी रखना चाहिये एवं बौने और झाड़ी दार किस्मों के लिये 60 x 50 सेंमी. की दूरी प्र्याप्त है। बेलदार किस्मों के लिये तकरीबन 30 किलो बीज एक हेक्टेयर हेतु पर्याप्त होता है। झाड़ीदार किस्मों के लिये 50-60 किलो बीज प्र्याप्त है। फूल एवं फल झड़ने से रोकने हेतु कैल्शियम क्लोराइड 0.1% एवं नेपन्थेलीन एसिटिक एसिड का 100 पी.पी.एम. का छिड़काव फूल लगने के प्रारंम्भिक आवस्था में करें।

खाद एवं उर्वकर

सेम एक दलहनी फसल है। जो वायुमण्डलीय नत्रजन को अपने जड़ की गाँठों में संचित कर पौधे को उपलब्ध कराती है। इसकी अधिक उपज प्राप्त करने के लिये 200 कुन्टल गोबर की खाद, 20 किग्रा, 60 किग्रा और 60 किग्रा. क्रमशः नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश दें। गोबर की खाद की पूरी मात्रा खेत के तैयारी के समय मिट्टी में मिलायें। फॉस्फोरस व

पोटाश की पूरी मात्रा और नत्रजन की आधी मात्रा बुआई के समय गाँठों में डालें। नत्रजन की शेष आधी मात्रा का 30-35 दिन बाद उपरिवेषण करें।

सिंचाई

सेम को वैसे तो कम पानी की आवश्यकता होती है, वर्षा के मौसम में पानी की जरूरत वर्षा से पूरी हो जाती है परन्तु सर्दी और बसंत में पानी की आवश्यकता पड़ती है । विशेष रूप से क्रांतिक अवस्था, जैसे पौधे की बढ़वार के समय पानी अवश्य देवें ।

अन्तराशस्यीय क्रियायें

बेल वाली किस्मों को झाड़ियों या लकड़ी का मचान बनाकर उनपर चढ़ायें। आवश्यकता पड़ने पर शुरू में बोआई के 30 दिन बाद निराई, गुड़ाई एवं खरपतवार निकाले।

तुड़ाई

हरे फलियों की तुड़ाई करें जब वो मुलायम हों और उचित आकार प्राप्त कर लिये हों। फलियों की तुड़ाई नवम्बर से फरवरी तक कर सकते हैं। बीज निकालने के लिये फलों को परिपक्व होने दें और सूखने पर उनकी तुड़ाई कर उनसे बीज निकाल लें। बीजों का उपयोग भी सब्जी के रूप में या बीज के रूप में या फिर दाल के रूप में किया जा सकता है।

उपज

झाड़ीदार प्रजाजियो से हरी फलियों की औसत उपज 80-100 कुन्तल एवं बेल वाली प्रजातियों से 100-140 कुन्तल प्रति हेक्टेयर मिलती है। दानों की उपज 6-8 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

सेम के रोग एवं उनका नियंत्रण

(क) भभुतिया रोग या चूर्णिल आसिता: पत्तियों, डन्इलों तथा फलियों पर सफेद चूर्ण सा जमा हो जाता है। पत्तियाँ पीली होकर गिर जाती हैं। इसके नियंत्रण हेतु 2.5 किलोग्राम घुलनशील गंधक पूर्ण 700 ली. में घोलकर/हे. छिड़काव करें।

(ख) श्यामवर्ण (एन्थ्रेक्नोज) : पत्तियों और फलियों पर पीले से काले रंग के छोटे धब्बे बन जाते हैं, जो बाद में पूरी पत्ती और फली को ढक लेते हैं। फलियाँ उपयोग के लिये अनुपयुक्त हो जाते हैं। निदान हेतु बीज को कार्बेन्डाजिम दवा से 2.5 ग्रा./किलो बीज की दर से उपचार करें।

(ग) झुलसा रोग : पत्तियों पर जल सित्तक और पारदर्शक धब्बे बन जाते हैं बाद में तना एवं फली भी संक्रमित होकर अनुपयोगी हो जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिये बीजोपचार स्ट्रेप्टोसाइक्लिन से 0.01% की दर से करें।

(घ) विषाणु रोग (पीला मोजेक) : इसके प्रभाव से पत्तियों का आकार बिगड़कर पीला तथा सिकुड़ जाता है। बढ़वार रूक जाती है। पैदावार बिल्कुल कम हो जाती है। नियंत्रण हेतु मिथाइल डिमेटान 1.5 मिली/ली. पानी में घोलकर छिड़के, जिससे रोग वाहक (सफेद मक्खी एवं माहूं) न उपजे। रोगी पौधो को उखाड़ कर जला दें।

प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

(क) माहूं : नर्म पत्तियों तथा शाखाओं का रक्त चूसता है। पौधों की बढ़वार रूक जाती है नियंत्रण हेतु मेलाथियान दवा 1.5 मिली/ली. पानी में घोकर छिड़के।

(ख) फली छेदक : फलियों में छेद करके उन्हें नष्ट कर देता है निदान हेतु थायोडान दवा 2 मिली/ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(ग) लीफ माइनर: पानी में सुरंग बनाकर पत्तियों को नष्ट कर देता है। नुवाक्रान 1ली./700 ली. पानी में घोलकर छिड़के। नीमगिरी का अर्क 4% की दर से छिड़काव करें।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि सेम एक अत्यन्त पौष्टिक सब्जी है। इसका प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। सेम की खेती करने के लिये विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं होती है। थोड़े कम रख-रखव से इसकी अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। यदि किसान की खेती करे तो कम लागत पर अच्छी उपज प्राप्त कर मुनाफा प्राप्त कर सकते हैं।

❖❖

For the welfare of the Farmer's, the society "Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors" willing to publish E-magazine in the name of "Krishi Udyan Darpan E-Magazine (Hindi) / **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine (English**, Innovative Sustainable Farming**.)**, which covers across India.**

AUTHORS GUIDELINE

All authors submitting articles must be annual or Life member of **SAAHAS, Krishi Udyan Darpan** E-Magazine Hindi / **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine English**, (Innovative Sustainable Farming**). Articles must satisfy the minimum quality requirement and plagiarism policy. Author's can submit the original articles in Microsoft Word Format through provided email, along with scanned copy of duly signed **Copyright Form**. Without duly signed Copyright Form, submitted manuscript will not processed.

1. The manuscript submitted by the author(s) has the full responsibility of facts and reliable in the content, the published article in **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine (Hindi) / **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine English**, (Innovative Sustainable Farming**.) Editor/ Editorial board is not reliable with the manuscript.
2. Must be avoiding recommendation of Banned Chemicals by Govt. Of India.
3. The manuscript submitted by the author(s) should be in Microsoft Word along with the PDF file and the 2-3 (Coloured/Black) pictures should be in high quality resolution in JPEG format, manuscript contains pictures are should be original to the author(s).
4. Articles must be prepared in an editable Microsoft word format and should be submitted in the online manuscript submission system.
5. Write manuscript in **English** should be in **Times New Roman with font size 12 point in single spacing** and line spacing will be 1.0.
6. Write manuscript in **Hind**i should be in **Kurti Dev10 / Mangal with font size 12 point in single spacing** and line spacing will be 1.0.
7. The title should be short and catchy. Must be cantered at top of page in Bold with Capitalize Each Word case.
8. Authors Names, designations and affiliations should be on left below the title. Designations and affiliations should be given below the Authors' Names. Indicate corresponding author by giving asterisk (*) along with Email ID
9. Not more than five authors of one article.
10. It should summarize the content of the article written in simple sentences. (Word limit 100 -150) and the full article should contains (**1600 words maximum or 3 page of A4 Size**)
11. The text should be clear, giving complete details of the article in simple Hindi/English. It should contain a short introduction and a complete methodology and results. **Authors must draw Conclusions and the Reference of their articles at last**. The abbreviation should be written in full for the first time. Scientific names and technical nomenclature must be accurate. Tables, figures, and photographs should be relevant and appropriately placed with captions among the texts.
12. Introduction must present main idea of article. It should be well explained but must be limited to the topic.
13. Avoid the **Repetitions** of word's, sentences and Headings.
14. The main body of an article may include multiple paragraphs relevant to topic. Add brief subheads at appropriate places. It should be informative and completely self-explanatory.
15. Submitted manuscript are only running article and contains the field of Agriculture, Horticulture and Allied sectors.
16. All disputes subject to Prayagraj Jurisdiction only.

ABOUT THE SOCIETY

Father of Nation Mahatma Gandhi's concept of rural development meant self-reliance, and least dependence on outsiders. India is an agrarian country and about 65% of our population lives in rural areas. But unfortunately, most of us do not have any idea about the extent of poverty and the real conditions of rural India.

With the purpose of serving the agricultural fraternity and farming community the Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors (SAAHAS) was founded in 2020 (under Society Registration Act, 1860). Among multifarious ways of serving farming community we are involved in training of the farmers by organising technology dissemination programmes in villages, guiding them to adopt good agricultural practices involving planned crop management. It helps in reducing farm base losses and motivating them to become farmer level entrepreneur rather than a simple producer. It involves initiating skill based knowledge to the student of agriculture, horticulture and allied sectors to encourage them to serve the farmers in the best possible ways.

SAAHAS calls us to look into the genuine problems of farmers and address those issues for their betterment in the arena of Agriculture, horticulture and allied sectors. Besides agriculture, horticultural crop production has been given a major focus by Govt. of India in future crop diversification, improving livelihood through doubling farmers' income, economic opportunities through export and job opportunities. While good beginning is made, much is to be achieved in different areas in agro-horticulture sector.

Apart from that, SAAHAS helps developing the culture to involve more number of women in farming, processing of crops and value addition thereof for higher returns in terms of total income. SAAHAS eagerly involves with the farmers and agriculture entrepreneur to motivate them for introducing hi-tech farming, which includes growing of high value horticultural crops in hydroponics, aeroponics, polyhouse, net house and greenhouse. The society has geared up its activities to take up the challenges of biotic and abiotic stresses, emerging needs of quality seeds and planting material and reducing cost of production.

There are several government and non-government organisations intended of farmer's welfare; still there is dire need for more involvement and attachment with the farmers. Our society's noble initiative can ensure diminishing of the persistent gap between agro-technocrats, scientists with the needy farmers. We not only ensure that the farmers choose right variety of right crop, better nutrient management through diagnosis recommended system and pest diagnosis but we also help them to sale their produce at premium rates. There is a major issue of chemical residues in food, soil and ecology which is also a big concern of the century. The Society also aims to motivate the farmers either for minimal use of chemical inputs or total adoption of organic farming. Consultancy, training, awareness programs, national and international seminars and symposia and technical services are the prime activities of the SAAHAS.

Society for advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors publishes peer reviewed scientific journal, 'Journal of Applied Agriculture and Life Sciences (JAALS)', biannually since January 2020 focusing on articles, research papers and short communications of both basic and applied aspect of original research in all branches of Agriculture, horticulture and other allied sciences. To apprise the scientists and all those who are working in the field of Agriculture, horticulture and allied sectors about recent scientific advancement is the aim of the Journal.